स्वर्ण धूलि

श्री सुमित्रानंदन पंत

प्रकाशक
भारती भण्डार लीडर प्रेस, प्रयाग

श्री सुमित्रानन्दन पंत

विज्ञापन

'स्वर्ण धूलि' का धरातल सामाजिक है । इस संग्रह में कुछ १९४१ सन् के गीत भी सम्मिलित हैं । 'सन्यासी का गीत' श्री स्वामी विवेकानंद कृत 'सांग आफ़ द सन्यासिन्' का रूपांतर है, जो १९३५ की रचना है । अन्त में वैदिक मंत्रों तथा तत्संबंधी अध्ययन से प्रभावित होकर कुछ छंद जोड़ दिये हैं, आशा है पाठकों को वे रुचिकर प्रतीत होंगे । 'मानसी' स्वतंत्र रूपक है ।

सीता,
मद्रास : १९ मार्च १९४७ } श्री सुमित्रानंदन पंत

अनुक्रमणिका

मुझे असत् से ले जाओ हे सत्य ओर
मुझे तमस से उठा, दिखाओ ज्योति छोर,
मुझे मृत्यु से बचा, बनाओ अमृत भोर !
बार बार आकर अंतर में हे चिर परिचित,
दक्षिण मुख से, रुद्र, करो मेरी रक्षा नित !

स्वर्ण धूलि

स्वर्ण बालुका किसने बरसा दी रे जगती के मरुथल में,
सिकता पर स्वर्णांकित कर स्वर्गिक आभा जीवन मृग जल में!

स्वर्ण रेणु मिल गई न जाने कब धरती की मर्त्य धूलि से,
चित्रित कर, भर दी रज में नव जीवन ज्वाला अमर तूलि से!

अंधकार की गुहा दिशाओं में हँस उठी ज्योति से विस्तृत,
रजत सरित सा काल बह चला फेनिल स्वर्ण क्षणों से गुंफित!

खंडित सब हो उठा अखंडित, बने अपरिचित ज्यों चिर परिचित,
नाम रूप के भेद भर गए स्वर्ण चेतना से आलिंगित!

चक्षु वाक् मन श्रवण बन गए सूर्य अग्नि शशि दिशा परस्पर,
रूप गंध रस शब्द स्पर्श की झंकारों से पुलकित अंतर!

दैवी वीणा पुनः मानुषी वीणा बन नव स्वर में झंकृत,
आत्मा फिर से नव्य युग पुरुष को निज तप से करती सर्जित!

बीज बनें नव ज्योति वृत्तियों के जन मन में स्वर्ण धूलि कण,
पोषण करे प्ररोहों का नव अंध धरा रज का संघर्षण!

चीर आवरण भू के तम का स्वर्ण शस्य हों रश्मि अंकुरित,
मानस के स्वर्णिम पराग से धरणी के देशांतर गर्भित!

पतिता

रोता हाय मार कर माधव
वृद्ध पड़ोसी जो चिर परिचित,
'क्रूर, लुटेरे, हत्यारे.... कर गए
बहू को, नीच, कलंकित !!'

'फूटा करम ! धरम भी लूटा !'
शीष हिला, रोते सब परिजन,
'हा अभागिनी ! हा कलंकिनी !'
खिसक रहे गा गा कर पुरजन !

सिसक रही सहमी कोने में
अबला साँसों की सी ढेरी,
कोस रहीं घेरी पड़ोसिनें,
आँख चुराती घर की चेरी !

इतने में घर आता केशव,
'हा बेटा !' कर घोरतर रुदन
माँथा लेते पीट कुटुंबी,
छिन्नलता सा कँप उठता तन !

'सब सुन चुका !' चीख़ता केशव,
'बंद करो यह रोना धोना !
उठो मालती, लील जायगा
तुमको घर का काला कोना !

'मन से होते मनुज कलंकित,
रज की देह सदा से कलुषित,
प्रेम पतित पावन है, तुमको
रहने दूँगा मैं न कलंकित !'

परकीया

विनत दृष्टि हो बोली करुणा,
आँखों में थे आँसू के घन,
'क्या जाने क्या आप कहेंगे,
मेरा परकीया का जीवन !'

स्वच्छ सरोवर सा वह मानस,
नील शरद नभ से वे लोचन
कहते थे वह मर्म कथा जो
उमड़ रही थी उर में गोपन !

बोला विनय, 'समझ सकता हूँ,
मैं त्यक्ता का मानस क्रंदन,
मेरे लिए पंच कन्या में
षष्ट आप हैं, पातक मोचन !

'जाबाला की तरह आपको
अर्पित कर अपना यौवन धन
देना पड़ा मूल्य जीवन का
तोड़ बाह्य सामाजिक बंधन !'

'फिर भी लगता मुझे, आपने
किया पुण्य जीवन है यापन,
बतलाती यह मन की आभा,
कहता यह गरिमा का आनन !

'पति पत्नी का सदाचार भी
नहीं मात्र परिणय से पावन,
काम निरत यदि दंपति जीवन,
भोग मात्र का परिणय साधन !

'प्राणों के जीवन से ऊँचा
है समाज का जीवन निश्चय,
अंग लालसा में, सामाजिक
सृजन शक्ति का होता अपचय !

'पंकिल जीवन में पंकज सी
शोभित आप देह से ऊपर,
वही सत्य जो आप हृदय से,
शेष शून्य जग का आडंबर !

'अतः स्वकीया या परकीया
जन समाज की है परिभाषा,
काम मुक्त औ' प्रीति युक्त
होगी मनुष्यता, मुझको आशा !'

ग्रामीण

'अच्छा, अच्छा,' बोला श्रीधर,
हाथ जोड़ कर, हो मर्माहत,
'तुम शिक्षित, मैं मूर्ख ही सही,
व्यर्थ बहस, तुम ठीक, मैं ग़लत !

'तुम पश्चिम के रंग में रँगे,
मैं हूँ दक़ियानूसी भारत,'
हँसा ठहाका मार मनोहर,
'तुम औ' कट्टर पंथी ? लानत !'

'सूट बूट में सजे धजे तुम
डाल गले फाँसी का फंदा,
तुम्हें कहे जो भारतीय, वह
है दो आँखोंवाला अंधा !

'अपनी अपनी दृष्टि है,' तुरत
दिया क्षुब्ध श्रीधर ने उत्तर,
'भारतीय ही नहीं, बल्कि मैं
हूँ ग्रामीण हृदय के भीतर !

'धोती कुरते चादर में भी
नई रोशनी के तुम नागर,
मैं बाहर की तड़क भड़क में
चमकीली गंगा जल गागर !'

'यह सच है कि,' मनोहर बोला,
'तुम उथले पानी के डाबर,
मुझको चाहे नागर कहलो
या खारे पानी का सागर !'

'तुमने केवल अधनंगे
भारत का गँवई तन देखा है,
श्रीधर संयत स्वर में बोला,
मैंने उसका मन देखा है !'

'भारतीय भूसा पिंजर में
तुम हो मुखर पश्चिमी तोते
नागरिकों के दुराग्रहों
तर्कों वादों के पंडित थोथे !

'मैं मन से ग्रामों का वासी
जो मृग तृष्णाओं से ऊपर
सहज आंतरिक श्रद्धा से
सद् विश्वासों पर रहते निर्भर !

'जो अदृश्य विश्वास सरणि से
करते जीवन सत्य को ग्रहण,
जो न त्रिशंकु सदृश लटके हैं,
भू पर जिनके गड़े हैं चरण !

'उस श्रद्धा विश्वास सूत्र में
बँधा हुआ मैं उनका सहचर
भारत की मिट्टी में बोए
जो प्रकाश के बीज हैं अमर !'

सामंजस्य

भाव सत्य बोली मुख मटका
'तुम - मैं की सीमा है बंधन,
मुझे सुहाता बादल सा नभ में
मिल जाना, खो अपनापन !

ये पार्थिव संकीर्ण हृदय हैं,
मोल तोल ही इनका जीवन,
नहीं देखते एक धरा है,
एक गगन है, एक सभी जन !'

बोली वस्तु सत्य मुँह बिचका,
'मुझे नहीं भाता यह दर्शन,
भिन्न देह हैं जहाँ, भिन्न रुचि,
भिन्न स्वभाव, भिन्न सब के मन !

नहीं एक में भरे सभी गुण,
द्वन्द्व जगत में हैं नारी नर,
स्नेही द्रोही, मूर्ख चतुर हैं,
दीन धनी कुरूप औ' सुन्दर !

आत्म सत्य बोली मुसका कर,
'मुझे ज्ञात दोनों का कारण,
मैं दोनों को नहीं भूलती,
दोनों का करती संचालन !'

पंख खोल सपने उड़ जाते,
सत्य न बढ़ पाता गिन गिन पग,
सामंजस्य न यदि दोनों में
रखती मैं, क्या चल सकता जग ?'

आज़ाद

पैगंबर के एक शिष्य ने
पूछा, 'हज़रत, बंदे को शक़
है आज़ाद कहाँ तक इंसा
दुनिया में पाबंद कहाँ तक ?'

'खड़े रहो !' बोले रसूल तब,
'अच्छा, पैर उठाओ ऊपर,
'जैसा हुक्म ! मुरीद सामने
खड़ा होगया एक पैर पर !

'ठीक, दूसरा पैर उठाओ'
बोले हँसकर नबी फिर तुरत,
बार बार गिर, कहा शिष्य ने
'यह तो नामुमकिन है हज़रत !'

'हो आज़ाद यहाँ तक, कहता
तुमसे एक पैर उठ ऊपर,
बँधे हुए दुनिया से कहता
पैर दूसरा अड़ा ज़मी पर !'—

पैगंबर का था यह उत्तर !

लोक सत्य

बोला माधव,
प्यारे यादव,

'जब तक होंगे लोग नहीं अपने सत्वों से परिचित
जन संग्रह बल पर भव संस्कृति हो न सकेगी निर्मित !
आज अल्प हैं जीवित जग में औ' असंख्य उत्पीड़ित,
लौह मुष्टि से हमें छीननी होगी सत्ता निश्चित !'

बोला यादव,
'प्यारे माधव'

मुझको लगता आज वृत्त में घूम रहा मानव मन,
भौतिकता के आकर्षण से रण जर्जर जग जीवन !
समतल व्यापी दृष्टि मनुज की देख न पाती ऊपर,
देख न पाती भीतर अपने, युग स्थितियों से बाहर !

'नहीं दीखता मुझे जनों का भूत भ्रांति में मंगल,
बाह्य क्रांति से प्रबल हृदय में क्रांति चल रही प्रतिपल !
मध्य वर्ग की वैभव तंद्रा के स्वप्नों से जग कर
अभिनव लोक सत्य को हमको स्थापित करना भू पर !

'युग युग के जीवन से औ' युग जीवन से उत्सर्जित
सूक्ष्म चेतना में मनुष्य की, सत्य हो रहा विकसित !
आज मनुज को ऊपर उठ औ' भीतर से हो विस्तृत
नव्य चेतना से जग जीवन को करना है दीपित !'

बोला यादव,
'प्यारे माधव,

'वही सत्य कर सकता मानव जीवन का परिचालन
भूतवाद हो जिसका रज तन, प्राणिवाद जिसका मन,
औ' अध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गभीर चिरंतन
जिसमें मूल सृजन विकास के, विश्व प्रगति के गोपन !

'आज हमें मानव मन को करना आत्मा के अभिमुख,
मनुष्यत्व में मज्जित करने युग जीवन के सुख दुख !
पिघला देगी लौह मुष्टि को आत्मा की कोमलता
जन बल से रे कहीं बड़ी है मनुष्यत्व की क्षमता !'

स्वप्न-निर्बल

'तुम निर्बल हो, सब से निर्बल !'
बोला माधव !
'मैं निर्बल हूँ औ' युग के निर्बल का संबल,'
बोला यादव,

'यह युग की चेतना आज जो मुझमें बहती,
बुद्धिमना, अति प्राण मना यह सब कुछ सहती !
एक ओर युग का वैभव है, एक ओर युग तृष्णा,
एक ओर युग दुःशासन, औ' एक ओर युग कृष्णा !

'देहमना मानव मुरझाता,
आत्म मना मानव दुख पाता,
इस युग में प्राणों का जीवन
बहता जाता, बहता जाता !'

'क्या है यह प्राणों का जीवन ?
कैसा यह युग दर्शन ?

बोला माधव,
'प्रिय यादव,
'यह भेद बताओ गोपन !'

'यह जीवनी शक्ति का सागर
उद्वेलित जो प्रतिक्षण,

जिसको युग चेतना सदा से
करती आई मंथन !

बोला यादव,
'प्रिय माधव,

'कर शंभु चाप का भंजन
किया राम ने मुक्त
जीर्ण आदर्शों से जग जीवन !

'युग चेतना राम बन कर फिर
नव युग परिवर्तन में
मध्य युगों की नैतिक असि
खंडित करती जन मन में !

'यह संकीर्ण नीतिमत्ता है
ज्यों असि धारा का पथ,
आज नहीं चल सकता इस पर
भव मानवता का रथ !

'जिसको तुम दुर्बलता कहते
युग प्राणों का कंपन,
मुक्त हो रही विश्व चेतना
तोड़ युगों के बंधन !'

'प्यारे माधव,'
बोला यादव,

'हम दुर्बल हैं, यह सच है,
पर युग जीवन में दुर्बल,
सूक्ष्म शरीरी स्वप्न आजके
होंगे कल के संबल !'

गणपति उत्सव

कितना रूप, राग रंग,
कुसुमित जीवन उमंग !
अर्ध सभ्य भी जग में
मिलती है प्रति पग में !

श्री गणपति का उत्सव,
नारी नर का मधुरव !
श्रद्धा विश्वास का
आशा उल्लास का
दृश्य एक अभिनव !

युवक नव युवती सुघर !
नयनों से रहे निखर
हाव भाव सुरुचि चाव
स्वाभिमान, अपनाव,
संयम संभ्रम के कर !

कुसमय ! विप्लव का डर !
आवे यदि जो अवसर
तो कोई हो तत्पर
कह सकेगा वचन प्रीत,
'मारो मत, मृत्यु भीत,
पशु हैं रहते लड़कर !

'मानव जीवन पुनीत,
मृत्यु नहीं हार जीत,
रहना सब को भू पर !'

'कह सकेगा साहस भर
देह का नहीं यह रण,
मन का यह संघर्षण !

'आओ, स्थितियों से लड़ें
साथ साथ आगे बढ़ें;
भेद मिटेंगे निश्चय
ऐक्य की होगी जय !

'जीवन का यह विकास,
आ रहे मनुज पास !
उठता उर से रव है,—
एक हम मानव हैं
भिन्न हम दानव हैं !'

आशंका

यदि जीवन संग्राम
नाम जीवन का,
अमृत और विष ही परिणाम
उदधि मंथन का,

सृजन प्रथा तब प्रगति विकास नहीं है,
वृद्धि और परिणति ही कथा सही है !

नित्य पूर्ण यह विश्व चिरंतन,
पूर्ण चराचर, मानव तन मन,
अंतर्बाह्य पूर्ण चिर पावन !

केवल जीव वृद्धि पाते हैं,
वे परिणत होते जाते हैं,
जीवन क्षण, जीवन के युग,

जीवन की स्थितियाँ

परिवर्तित परिवर्धित होकर
भव इतिहास कहाते हैं !
छाया प्रकाश दोनों मिलकर
जीवन को पूर्ण बनाते हैं !

यदि जैसा संग्राम
नाम जीवन का,
अमृत और विष ही परिणाम
उदधि मंथन का,

तब परिणति ही है इतिहास सृजन का,
क्रम विकास अध्यास मात्र रे मन का !

जन्मभूमि

जननी जन्मभूमि प्रिय अपनी, जो स्वर्गादपि चिर गरीयसी !

जिसका गौरव भाल हिमाचल,
स्वर्ण धरा हँसती चिर श्यामल,
ज्योति ग्रथित गंगा यमुना जल,
वह जन जन के हृदय में बसी !

जिसे राम लक्ष्मण औ' सीता
बना गए पद धूलि पुनीता,
जहाँ कृष्ण ने गाई गीता
बजा अमर प्राणों में वंशी !

सीता सावित्री सी नारी
उतरीं आभा देही प्यारी,
शिला बनी तापस सुकुमारी
जड़ता बनी चेतना सरसी !

शांति निकेतन जहाँ तपोवन,
ध्यानावस्थित हो ऋषि मुनि गण
चिद् नभ में करते थे विचरण,
जहाँ सत्य की किरणें बरसीं !

आज युद्ध जर्ज जग जीवन,
पुनः करेगी मंत्रोच्चारण
वह वसुधैव बना कुटुम्बकम्,
उसके मुख पर ज्योति नव लसी !

जननी जन्मभूमि प्रिय अपनी, जो स्वर्गादपि है गरीयसी !

युगागम

आज रे युगों का सगुण
विगत सभ्यता का गुण,
जन जन में, मन मन में
हो रहा नव विकसित,
नव्य चेतना सर्जित !

आ रहा नव नूतन
जानता जग का मन,
स्वर्ण हास्य मय नूतन
भावी मानव जीवन,
जानता अंतर्मन !

जा रहा पुराचीन
तर्जन कर, गर्जन कर,
आ रहा चिर नवीन
वर्षण कर, सर्जन कर !

तमस का घन अपार,
सूखी सृष्टि वृष्टि धार,
गरजता,—अहंकार
हृदय भार !

हे अभिनव, भू पर उतर,
रज के तम को छू कर
स्वर्ण हास्य से भर दो,
भू मन को कर भास्वर !

सृजन करो नव जीवन,
नव कर्म, वचन, मन !

काले बादल

सुनता हूँ, मैंने भी देखा,
काले बादल में रहती चाँदी की रेखा !

काले बादल जाति द्वेष के,
काले बादल विश्व क्लेश के,
काले बादल उठते पथ पर
नव स्वतंत्रता के प्रवेश के !

सुनता आया हूँ, है देखा,
काले बादल में हँसती चाँदी की रेखा !

आज दिशा हैं घोर अँधेरी,
नभ में गरज रही रण भेरी,
चमक रही चपला क्षण क्षण पर,
झनक रही झिल्ली झन झन कर !

नाच नाच आँगन में गाते केकी केका
काले बादल में लहरी चाँदी की रेखा !

काले बादल, काले बादल,
मन भय से हो उठता चंचल !
कौन हृदय में कहता पलपल
मृत्यु आरही साजे दलबल !

आग लग रही, घात चल रहे, विधि का लेखा !
काले बादल में छिपती चाँदी की रेखा !

मुझे मृत्यु की भीति नहीं है,
पर अनीति से प्रीति नहीं है,
यह मनुजोचित रीति नहीं है;
जन में प्रीति प्रतीति नहीं है !

देश जातियों का कब होगा
नव मानवता में रे एका;
काले बादल में कल की
सोने की रेखा !

|||

जाति मन

सौ सौ बाँहें लड़ती हैं, तुम नहीं लड़ रहे,
सौ सौ देहें कटती हैं, तुम नहीं कट रहे,
हे चिर मृत, चिर जीवित भू जन !

अंध रूढ़िएँ अड़ती हैं, तुम नहीं अड़ रहे,
सूखी टहनी छँटती हैं, तुम नहीं छँट रहे,
जीवन्मृत नव जीवित भू जन !

जाने से पहिले ही तुम आगए यहाँ
इस स्वर्ण धरा पर,
मरने से पहिले तुमने नव जन्म ले लिया,
धन्य तुम्हें हे भावी के नारी नर !

काट रहे तुम अंधकार को,
छाँट रहे मृत आदर्शों को,
नव्य चेतना में डुबा रहे,
युग मानव के संघर्षों को !

मुक्त कर रहे भूत योनि से
भावी के स्वर्णिम वर्षों को,
हाँक रहे तुम जीवन रथ, नव मानव बन,
पथ में बरसा, शत आशाओं को,
शत हर्षों को !

सौ सौ बाँहें, सौ सौ देहें नहीं कट रहीं,
बलि के अज, तुम आज कट रहे,
युग युग के वैषम्य, जाति मन,
एवमस्तु, बहिरंतर जो तुम
आज छँट रहे !

क्षण जीवी

रक्त के प्यासे, रक्त के प्यासे !
सत्य छीनते ये अबला से,
बच्चों को मारते, बला से !
रक्त के प्यासे !

भूत प्रेत ये मनो भूमि के
सदियों से पाले पोसे,
अँधियाली लालसा गुहा में
अंध रूढ़ियों के शोषे !

मरने और मारने आए
मिटते नहीं एक दो से,
ये विनाश के सृजन दूत हैं,
इनको कोई क्या कोसे !

रक्त के प्यासे !
यह जड़त्व है मन की रज का
जो कि मृत्यु से ही जाता,
धीरे धीरे धीरे जीवन
इसको कहीं बदल पाता !

ऊर्ध्व मनुज ये नहीं, अधोमुख,
उलटे जिनके जीवन मान,
अंधकार खींचता इन्हें है,
गाता रुधिर प्रलय के गान !

रक्त के प्यासे !
हृदय नहीं ये देह लूटते हैं अबला से,
जाति पाँति से रहित, दुधमुँहे
बच्चों को मारते, बला से !
रक्त के प्यासे !

× × ×

ऊर्ध्व मनुज बनना महान है,
वे प्रकाश की हैं संतान;
ऊर्ध्व मनुज बनना महान है,
करना उन्हें आत्म निर्माण !
उन्हें अनादि अनंत सत्य का
करना है आदान प्रदान,
धर प्रतीति ज्वाला हाथों में
करना जीवन का सम्मान !

उन्हें प्रेम को, सत्य, ज्योति को
शलभ समर्पित करने प्राण,
धुल जावें धरती के धब्बे
इनके प्राणों की बरसा से !
सत्य के प्यासे !

मनुष्यत्व

छोड़ नहीं सकते रे यदि जन
जाति वर्ग औ' धर्म के लिए रक्त बहाना,
बर्बरता को संस्कृति का बाना पहनाना,—

तो अच्छा हो छोड़ दें अगर
हम हिन्दू मुस्लिम औ' ईसाई कहलाना!
मानव होकर रहें धरा पर,
जाति वर्ण धर्मों से ऊपर,
व्यापक मनुष्यत्व में बँधकर!

नहीं छोड़ सकते रे यदि जन
देश राष्ट्र राज्यों के हित नित युद्ध कराना,
हरित जनाकुल धरती पर विनाश बरसाना,—

तो अच्छा हो छोड़ दें अगर
हम अमरीकन रूसी औ' इंग्लिश कहलाना!
देशों से आए धरा निखर,
पृथ्वी हो सब मनुजों की घर,
हम उसकी संतान बराबर!

छोड़ नहीं सकते हैं यदि जन
नारी मोह, पुरुष की दासी उसे बनाना,
देह द्वेष औ' काम क्लेश के दृश्य दिखाना,—

तो अच्छा हो छोड़ दें अगर
हम समाज में द्वन्द्व स्त्री पुरुष में बँट जाना !
स्नेह मुक्त सब रहें परस्पर,
नारी हो स्वतंत्र जैसे नर,
देव द्वार हो मातृ कलेवर !

चौथी भूख

'भूखे भजन न होय गुपाला,'
यह कबीर के पद की टेक,

देह की है भूख एक !—

कामिनी की चाह, मन्मथ दाह,
तन को हैं तपाते,
औ' लुभाते विषय भोग अनेक;
चाहते ऐश्वर्य सुख जन,
चाहते स्त्री पुत्र औ' धन,
चाहते चिर प्रणय का अभिषेक !
देह की है भूख एक !

दूसरी रे भूख मन की !

चाहता मन आत्म गौरव,
चाहता मन कीर्ति सौरभ,
ज्ञान मंथन, नीति दर्शन,
मान पद अधिकार पूजन !
मन कला विज्ञान द्वारा
खोलता नित ग्रंथियाँ जीवन मरण की !
दूसरी यह भूख मन की !

तीसरी रे भूख आत्मा की गहन !

इंद्रियों की देह से ज्यों है परे मन,
मनो जग से परे त्यों आत्मा चिरंतन;
जहाँ मुक्ति विराजती
औ' डूब जाता हृदय क्रंदन !

वहाँ सत् का वास रहता,
वहाँ चित् का लास रहता,
वहाँ चिर उल्लास रहता,
यह बताता योग दर्शन !

किंतु ऊपर हो कि भीतर
मनो गोचर या अगोचर,
क्या नहीं कोई कहीं ऐसा अमृत घन
जो धरा पर बरस भरदे भव्य जीवन ?
जाति वर्गों से निखर जन
अमर प्रीति प्रतीति में बँध
पुण्य जीवन करें यापन,
औ' धरा हो ज्योति पावन !

नरक में स्वर्ग

(१)

गत युग के जन पशु जीवन का जीता खँडहर
वह छोटा सा राज्य नरक था इस पृथ्वी पर !
कीड़ों से रेंगते अपाहिज थे नारी नर,
मूल्य नहीं था जीवन का कानी कौड़ी भर !

उसे देख युग युग का मन कर उठता क्रंदन
हाय विधाता, यह मानव जीवन संघर्षण !!
जग के चिर परिताप वहाँ करते थे कटु रण,
वह नृशंसता, द्वेष, कलह का था जड़ प्रांगण !

झाड़ फूँस के भग्न घरौंदों में लहराकर
हरी भरी गाँवों की धरती उठ ज्यों ऊपर
राज भवन के उच्च शिखर से उठा शास्ति कर
इंगित करती थी अलक्ष्य की ओर निरंतर !

उस अलक्ष्य में युग भविष्य जो था अंतर्हित
वह यथार्थ था जितना, मन में उतना कल्पित !
बाहर से थी राज्य प्रजा हो रही संगठित,
भीतर से नव मनुष्यत्व गोपन में विकसित !

(२)

राज महल के पास एक मिट्टी के कच्चे घर में
रहती थी मालिन की लड़की क्षुधा विदित पुर भर में !

मौन कुँई सी खिली गाँव के ज्यों निशीथ पोखर में
वह शशि मुखी सुधा की थी सहचरी हर्म्य अंबर में !

नव युवती थी, फूलों के मृदु स्पर्शों से पोषित तन,
सहज बोध के सलज वृंत पर विकसित सौरभ का मन !
मुग्ध कली वह, जग मादन वसंत था उसका यौवन,
भावों की पंखड़ियों पर रंजित निसर्ग सम्मोहन !

उसके आँगन में आ ऊषा स्वर्ण हास बरसाती,
राजकुमारी सुधा द्वार पर खड़ी नित्य मुसकाती;
दोनों सखियाँ उपवन में जा फूलों में मिल जातीं
इन्द्र चाप के रंगों में ज्यों इन्दु रश्मि रिल जातीं !

कोमल हृदय सुधाका था चिर विरह गरल से तापित,
जननि जनक की इच्छा से थी प्रणय भावना शासित !
फूलों का तन मधुर क्षुधा का मधुप प्रीति से शोषित,
राजकुमार अजित की थी वह स्वप्न संगिनी अविजित !

पंकजिनी थी क्षुधा, पंक में खिली दैन्य के निश्चय,
स्वर्ण किरण थी सुधा धरा की रज पर उतरी सहृदय !
दोनों के प्राणों का परिणय था जन के हित सुखमय,
स्वर्ग धरा का मधुर मिलन हो ज्यों स्रष्टा का आशय !

दोनों सखियाँ मिल गोपन में करतीं मर्म निवेदन,
दोनों की दयनीय दशा बन गई स्नेह दृढ़ बंधन !

जीवन के स्वप्नों का जीवन की स्थितियों से था रण,
तन मन की था क्षुधा बढ़ाता इंधन बन, नव यौवन !

कितने ऐसे युवति युवक हैं आज नहीं जो कुंठित,
जिनकी आशा अभिलाषा सुख स्वप्न नहीं भू लुंठित !
भीतर बाहर में विरोध जब बढ़ता है अनपेक्षित
तब युग का संचरण प्रगति देता जीवन को निश्चित !

(२)

राजभवन हे राजभवन, जन मन के मोहन,
युग युग के इतिहास रहे तुम भू के जीवन !
संस्कृति कला विभव के स्वप्नों से तुम शोभन
पृथ्वी पर थे स्वर्गिक शोभा के नंदनवन !

मदिर लोचनों से गवाक्ष थे मुग्ध कुवलयित,
मधुर नुपुरों की कलध्वनि से दिशि पल गुंजित !
नव वसंत के तुम शाश्वत विलास थे कुसुमित,
भू मंडल की विद्या के प्रकाश से ज्योतित !

हाय, आज किन तापों शापों से तुम पीड़ित
विस्फोटक बन गए धरा के उर के निन्दित !
जनगण के जीवन से तुम न रहे संबंधित
अहम्मन्यता, धन मद, मति जड़ता में मज्जित !

अब भी चाहो पा सकते तुम जन मन पूजन
जन मंगल के लिए करो जो विभव समर्पण !
जन सेवा व्रत के चिर व्रती रहो तुम दृढ़पण,
संस्कृति ज्ञान कला का करना सीखो पोषण !

तंत्र मात्र से हो सकते न मनुज परिचालित
उनके पीछे जब तक हो न चेतना विकसित !
प्रजा तंत्र के साथ राज्य रह सकते जीवित
जन जीवन विकास के नियमों से अनुशासित !

(४)

इन्क़लाब के तुमुल सिन्धु-सा एक रोज हो उठा तरंगित
वह छोटा सा राज्य क्रुद्ध जनता के आवेशों से नादित !
थी अग्रणी क्षुधा के कर में रक्त ध्वजा ज्वाला सी कंपित,
काल पड़ा था, क्षुब्ध प्रजा को था लगान भरना अस्वीकृत !

बल प्रयोग था किया राज्य ने, जनमत का कर प्रजा संगठन,
राजभवन को घेर अड़ी थी, सत्वों के हित देने जीवन !
हाथ क्षुधा का पकड़े था श्रम, उसका प्रिय साथी, प्रेमी जन,
द्वेष शिखा का शलभ अजित था देख रहा उनको सरोष मन !

देख रही थी क्षुधा खोल किंचित् अंतःपुर का वातायन,
उसे विदित था सोदर के मन में जो था चल रहा इधर रण !

दोनों सखियों के नयनों ने मिलकर मौन किया संभाषण,
दोनों के उर में था आकुल स्पंदन, आँखों में आँसू घन !

हार गए थे भूप मनाकर, बात प्रजा ने एक न मानी,
सह सकती थी, सच है, जनता और न शासन की मनमानी !
छोड़ भार युवराज पर सकल थे निश्चिन्त नृपति अभिमानी,
कुपित अजित ने जन विद्रोह दमन करने की मन में ठानी !

पा उसका संकेत सैनिकों ने, जो रहे सशस्त्र घेर कर,
अग्नि वृष्टि कर दी, जनगण थे मृत्यु कांड के लिए न तत्पर !
प्रबल प्रभंजन से सगर्व ज्यों आलोड़ित हो उठता सागर
क्रंदन गर्जन की हिल्लोलें उठने गिरने लगीं धरा पर !
खिन्न धरित्री पीती थी निज रस से पोषित मानव शोणित,
पृष्ठ द्वार से निकल सुधा हो गई भीड़ में उधर तिरोहित !
लाल ध्वजा को लक्ष्य बना निज, इधर अजित ने हो उत्तेजित,
मृत्यु ज्वाल दी उगल सुधा पर, प्रीति बन गई द्वेष की तड़ित !

'हाय, सुधा ! हा, राजकुमारी !' दशों दिशा हो उठी ज्यों ध्वनित,
'सुधे, सखी, प्राणों की प्यारी ! वज्र गिरा यह हम पर निश्चित !'
'ओ जन मानस राज हंसिनी, तुमने प्राण दिए जनगण हित,
वैभव की तज तेज हाय तुम धरा धूलि पर आज चिर शयित !!!

हलचल क्रंदन कोलाहल से राजमहल हिल उठा अचानक !
देखा सबने सुधा अंक में राजकुमारी सोई अपलक !

अश्रु अनम्र क्षुधा के उसको पहनाते थे स्नेह विजय स्रक्,
उसने ली थी छीन सखी से रक्त जिह्वध्वज मृत्यु भयानक !

रोते थे नरेश विस्मृत से, रानी पास पड़ी थी मूर्छित,
किंकर्तव्य विमूढ़ खड़ा था अजित अवाक् शून्य जीवन्मृत !
नत मस्तक थे नृप, घुटनों बल प्रजा प्रणत थी, उभय पराजित,
प्रीति प्रताड़ित हृदय सुधा का था निष्पंद प्रजा को अर्पित !

देख अजित को आत्मघात के हित उद्यत, विदीर्ण, दुखकातर,
झपट क्षुधा ने छीन लिया द्रुत शस्त्र हाथ से, कह, धिक् कायर !
साश्रु नयन उस क्षुब्ध युवक के मुख से निकले सुधा सिक्त स्वर
'सुधा आज से बहिन क्षुधा तुम, अजित विजित, जनगण का अनुचर!

× × ×

कथा मात्र है यह कल्पित, उपचेतन से अतिरंजित,
कहीं नहीं है राजकुमारी सुधा धरा पर जीवित !
मनुजोचित विधि से न सभ्यता आज हो रही निर्मित,
संस्कृत रे हम नाम मात्र को, विजयी हममें प्राकृत !

आज सुधा है, शोषित श्रम है, नग्न प्रजा तम पीड़ित,
प्रीति रहित है अजित काम, कामना न किंचित् विकसित !
अभी नहीं चेतन मानव से भू जीवन मर्यादित,
अभी प्रकृति की तमस शक्ति से मनुज नियति अनुशासित !

भावोन्मेष

पुष्प वृष्टि हो,
नव जीवन सौन्दर्य सृष्टि हो,
जो प्रकाश वर्षिणी दृष्टि हो !

लहरों पर लोटें नव लहरें
लाड़ प्यार की, पागलपन की,
नव जीवन की, नव यौवन की !

मोती की फुहार सी बरसें

कृपया

पृष्ठ चालीस पंक्ति पंद्रह में 'सुधा' के स्थान पर 'क्षुधा' पढ़िए ।

नव्य मंजरित हो जन जीवन,
नवल पल्लवित जग के दिशि क्षण,
नव कुसुमित मानव के तन मन !

बहे मलय साँसों में चंचल !
जीवन के बंधन खुल जाएँ,

भावोन्मेष

पुष्प वृष्टि हो,
नव जीवन सौन्दर्य सृष्टि हो,
जो प्रकाश वर्षिणी दृष्टि हो !

लहरों पर लोटें नव लहरें
लाड़ प्यार की, पागलपन की,
नव जीवन की, नव यौवन की !

मोती की फुहार सी छहरें
प्राणों के सुख की, भावों की,
सहज सुरुचि की, चित चावों की !

इन्द्रधनुष सी आभा फहरे
स्वप्नों की, सौन्दर्य सृजन की,
आशा की, नव प्रणय मिलन की !
लहरों पर लोटें नव लहरें !

कूक उठे प्राणों में कोयल !
नव्य मंजरित हो जन जीवन,
नवल पल्लवित जग के दिशि क्षण,
नव कुसुमित मानव के तन मन !

बहे मलय साँसों में चंचल !
जीवन के बंधन खुल जाएँ,

६

मनुजों के तन मन धुल जाएँ,
जन आदर्शों पर तुल जाएँ,
खिले धरा पर जीवन शतदल,
कूक उठे फिर कोयल !

युग प्रभात हो अभिनव !
सत्य निखिल बन जाय कल्पना,
मिथ्या जग की मिटे जल्पना,
कला धरा पर रचे अल्पना,
रुके युगों का जन रव !

प्रीति प्रतीति भरे हों अंतर,
विनय स्नेह सहृदयता के सर,
जीवन स्वप्नों से दृग सुन्दर,
सब कुछ हो फिर संभव !

जाति पाँति की कड़ियाँ टूटें,
मोह द्रोह मद मत्सर छूटें,
जीवन के नव निर्झर फूटें,
वैभव बने, पराभव,
युग प्रभात हो अभिनव !

अंतिम पैग़म्बर

दूर दूर तक केवल सिकता, मृत्यु, नास्ति, सूनापन !—
जहाँ हिंस्र बर्बर अरबों का रण जर्जर था जीवन !
ऊष्मा झंझा बरसाते थे अग्नि बालुका के कण,
उस मरुस्थल में आप ज्योति निर्झर से उतरे पावन !

वर्ग जातियों में विभक्त बद्दू औ' शेख़ निरंतर
रक्तधार से रँगते रहते थे रेती कट मर कर !
मंद धीर ऊँटों की गति से प्रेरित प्रिय छंदों पर
गीत गुनगुनाते थे जन, निर्जन को स्वप्नों से भर !

वहाँ उच्च कुल में जनमे तुम दीन क़ुरेशी के घर,
बने गड़रिए, तुम्हें जान प्रभु, भेड़ नवाती थीं सर !
हँस उठती थी हरित दूब मरु में प्रिय पदतल छूकर;
प्रथित ख़ादिजा के स्वामी तुम बने तरुण चिर सुंदर !

छोड़ विभव घर द्वार एक दिन, अति उद्वेलित अंतर
हिरा शैल पर चले गए तुम प्रभु की आज्ञा सिर धर;
दिव्य प्रेरणा से निःसृत हो जहाँ ज्योति विगलित स्वर
जगी ईश वाणी क़ुरान, चिर तपः पूत उर भीतर !

घेर तीन सौ साठ बुतों से काबा को, प्रति वत्सर
भेज कारवाँ, करते थे व्यापार क़ुरेश धनेश्वर;
उस मक्का की जन्मभूमि में, निर्वासित भी होकर,
किया प्रतिष्ठित फिर से तुमने अब्राहम का ईश्वर !

ज्योति शब्द, विद्युत् असि लेकर तुम अंतिम पैग़म्बर
ईश्वरीय जन सत्ता स्थापित करने आए भू पर !
नबी, दूरदर्शी, शासक, नीतिज्ञ, सैन्य नायक वर,
धर्म केतु, विश्वास सेतु, तुम पर जन हुए निछावर !

'अल्ला एक मात्र है ईश्वर और रसूल मोहम्मद'
घोषित तुमने किया, तड़ित असि चमका, मिटा अहम्मद !
ईश्वर पर विश्वास, प्रार्थना, दान—संत की संपद,
शांति धाम इस्लाम, जीव प्रति प्रेम, स्वर्ग जीवन प्रद !

जाति व्यर्थ हैं; सब समान हैं मनुज, ईश के अनुचर,
अविश्वास औ' वर्ग भेद से है जिहाद श्रेयस्कर !
दुर्बल मानव, पर रहीम ईश्वर चिर करुणा सागर,
ईश्वरीय एकता चाहता है इस्लाम धरा पर !

प्रकृति जीव ही को जीवन की मान इकाई निश्चित
प्राणों का विश्वास पंथ कर तुमने प्रभु का निर्मित,
व्यक्ति चेतना के बदले कर जाति चेतना विकसित
जीवन सुख का स्वर्ग किया अंतरतम नभ में स्थापित !

आत्मा का विश्लेषण कर या दर्शन का संश्लेषण,
भाव बुद्धि के सोपानों में बिलमाए न हृदय मन;
कर्म प्रेरणा स्फुरित शब्द से जन मन का कर शासन
ऊर्ध्व गमन के बदले समतल गमन बताया साधन !

स्वर्ग दूत जबरील तुम्हारा बन मानस पथ दर्शक
तुम्हें सुझाता रहा मार्ग जन मंगल का निष्कंटक;
तर्कों वादों और बुतों के दासों को, जन रक्षक,
प्राणों का जीवन पथ तुमने दिखलाया आकर्षक!

एक रात में मृत मरु को कर तुमने जीवन चेतन
पृथ्वी को ही प्रभु के शब्दों को कर दिया समर्पण;
'मैं भी अन्य जनों सा हूँ!' कह, रह सबसे साधारण
पावन तुम कर गए धरा को, धर्म तंत्र कर रोपण!

छायाभा

छाया प्रकाश जग जीवन का
बन जाता मधुर स्वप्न संगीत,
इस घने कुहासे के भीतर
दिप जाते तारे इन्दु पीत !

देखते देखते आ जाता,
मन पा जाता
कुछ जग के जगमग रूप नाम,
रहते रहते कुछ छा जाता,
उर को भाता
जीवन सौन्दर्य अमर ललाम !

प्रिय यहाँ प्रीति
स्वप्नों में उर बाँधे रहती,
स्वर्णिम प्रतीति
हँस हँस कर सब सुख दुख सहती !

अनिवार कामना
नित अबाध अमना बहती,
चिर आराधना
विपद में बाँह सदा गहती !

जड़ रीति नीतियाँ
जो युग कथा विविध कहतीं,
भीतियाँ
जागते सोते तन मन को दहतीं !

क्या नहीं यहाँ ? छाया प्रकाश की संसृति में !
नित जीवन मरण बिछुड़ते मिलते भव गति में !
ज्ञानी ध्यानी कहते, प्रकाश, शाश्वत प्रकाश,
अज्ञानी मानीं, छाया माया का विलास !

यदि छाया यह, किसकी छाया ?
आभा, छाया जग क्यों आया ?

मुझको लगता
मन में जगता,
यह छायाभा है अविच्छिन्न,
यह आँखमिचौनी चिर सुंदर,
सुख दुख के इन्द्रधनुष रंगों की
स्वप्न सृष्टि अज्ञेय, अमर !

दिवा स्वप्न

मेघों की गुरु गुहा सा गगन,
वाष्प बिन्दु का सिन्धु समीरण !

विद्युत् नयनों को कर विस्मित
स्वर्ण रेख करती हँस अंकित,
हलकी जल फुहार, तन पुलकित,
स्मृतियों से स्पंदित मन;
हँसते रुद्र मरुतगण !

जग, गंधर्व लोक सा सुंदर
जन, विद्याधर यक्ष कि किन्नर,
चपला, सुर अंगना नृत्यपर,—
छाया का प्रकाश घन से छन
स्वप्न सृजन करता घन !

ऐसा छाया बादल का जग
हर लेता मन, सहज क्षण सुभग !
भाव प्रभाव उसे देते रँग !
उर में हँसते इन्द्र धनुष क्षण,
सृजन शील यह सावन !

सावन

झम झम झम झम मेघ बरसते हैं सावन के,
छम छम छम गिरतीं बूँदें तरुओं से छन के !
चम चम बिजली चमक रही रे उर में घन के,
थम थम दिन के तम में सपने जगते मन के !

ऐसे पागल बादल बरसे नहीं धरा पर,
जल फुहार बौछारें धारें गिरतीं झर झर !
आँधी हर हर करती, दल मर्मर, तरु चर् चर्,
दिन रजनी औ' पाख बिना तारे शशि दिनकर !

पंखों से रे, फैले फैले ताड़ों के दल,
लंबी लंबी अंगुलियाँ हैं, चौड़े करतल !
तड़ तड़ पड़ती धार वारि की उन पर चंचल,
टप टप झरतीं कर मुख से जल बूँदें झलमल !

नाच रहे पागल हो ताली दे दे चल दल,
झूम झूम सिर नीम हिलातीं सुख से विह्वल !
हरसिंगार झरते, बेला कलि बढ़ती पल पल,
हँसमुख हरियाली में खग कुल गाते मंगल ?

दादुर टर टर करते, झिल्ली बजतीं झन झन,
म्याँउ म्याँउ रे मोर, पीउ पिउ चातक के गण !
उड़ते सोन बलाक आर्द्र सुख से कर क्रंदन,
घुमड़ घुमड़ घिर मेघ गगन में भरते गर्जन !

वर्षा के प्रिय स्वर उर में बुनते सम्मोहन,
प्रणयातुर शत कीट विहग करते सुख गायन !
मेघों का कोमल तम श्यामल तरुओं से छन !
मन में भू की अलस लालसा भरता गोपन !

रिमझिम रिमझिम क्या कुछ कहते बूँदों के स्वर,
रोम सिहर उठते, छूते वे भीतर अंतर !
धाराओं पर धाराएँ झरतीं धरती पर,
रज के कण कण में तृण तृण की पुलकावलि भर !

पकड़ वारि की धार झूलता है मेरा मन,
आओ रे सब मुझे घेर कर गाओ सावन !
इन्द्रधनुष के झूले में झूलें मिल सब जन,
फिर फिर आए जीवन में सावन मन भावन !

आह्वान

बरसो हे घन !
निष्फल है यह नीरव गर्जन,
चंचल विद्युत् प्रतिभा के क्षण,
बरसो उर्वर जीवन के कण,
हास अश्रु की झड़ से धो दो
मेरा मनो विषाद गगन !
बरसो हे घन !

हँसूं कि रोऊँ, नहीं जानता,
मन कुछ माने नहीं मानता,
मैं जीवन हठ नहीं ठानता,
होती जो श्रद्धा न गहन,
बरसो हे घन !

शशि मुख प्राणित नील गगन था,
भीतर से आलोकित मन था,
उर का प्रति स्पंदन चेतन था,
तुम थे, यदि था विरह मिलन,
बरसो हे घन !

अब भीतर संशय का तम है,
बाहर मृग तृष्णा का भ्रम है,

क्या यह नव जीवन उपक्रम है,
होगी पुनः शिला चेतन ?
बरसो हे घन !

आशा का प्लावन बन बरसो,
नव सौन्दर्य प्रेम बन सरसो,
प्राणों में प्रतीति बन हरसो,
अमर चेतना बन नूतन,
बरसो हे घन !

परिणति

स्वप्न समान बह गया यौवन
पलकों में मँडरा क्षण !

बँध न सका जीवन बाँहों में,
अँट न सका पार्थिव चाहों में,
लुक छिप प्राणों की छाहों में
व्यर्थ खोगया वह धन,
स्वप्नों का क्षण यौवन !

इन्द्र धनुष का बादल सुंदर
लीन हो गया नभ में उड़कर,
गरजा बरसा नहीं धरा पर,
विद्युत् धूम मरुत घन,
हास अश्रु का यौवन !

विरह मिलन का प्रणय न भाया,
अबला उर में नहीं समाया,
भीतर बाहर ऊपर छाया
नव्य चेतना वह बन,
धूप छाँह पट यौवन !

आशा और निराशा आई
सौरभ मधु पी मति अलसाई,

सत्य बनी फिर फिर परछाँई,
तड़ित चकित उत्थान पतन,
अनुभव रंजित यौवन !

अब ऊषा, शशि मुख, पिक कूजन,
स्मिति आतप, मंजरित प्राण मन,
जीवन स्पंदन, जीवन दर्शन,
इस असीम सौन्दर्य सृजन को
आत्म समर्पण !

अचिर जगत में व्याप्त चिरंतन,
ज्ञान तरुण अब यौवन !

ताल कुल

संध्या का गहराया झुट पुट,
भीलों का सा धरे सिर मुकुट,
हरित चूड़ कुकड़ू कूँ कुक्कुट

एक टाँग पर तुले, दीर्घतर,
पास खड़े तुम लगते सुन्दर
नारिकेल के हे पादप वर !

चक्राकार दलों से संकुल
फैलाए तुम करतल वर्तुल,
मंद पवन के सुख से कँप कँप
देते कर मुख ताली थप थप,
धन्य तुम्हारा उच्च ताल कुल !

धूमिल नभ के सामने अड़े
हाड़ मात्र तुम प्रेत से बड़े
मुझे डराते हिला हिला सर
बीस मूँड़ औ' बाँह नचाकर !

हैं कठोर रस भरे नारिफल,
मित जीवी, फैले थोड़े दल !

देवों की सी रखते काया
देते नहीं पथिक को छाया !

अगर न ऊँचे होते दादा,
कब का ऊँट तुम्हें खा जाता !

—एक बात, पर, लगता प्यारा
दूर, तरंगित क्षितिज तुम्हारा !

क्रोटन की टहनी

कच्चे मन सा काँच पात्र, जिसमें क्रोटन की टहनी,
ताज़े पानी से नित भर, टेबुल पर रखती बहनी !
धागों सी कुछ उसमें पतली जड़ें फूट अब आईं,
निराधार पानी में लटकी देतीं सहज दिखाई !
तीन पात, छींटे सुफ़ेद सोए चित्रित से जिन पर,
चौथा मुट्ठी खोल, हथेली फैलाने को सुन्दर !

बहन, तुम्हारा बिरवा, मैंने कहा एक दिन हँसकर,
यों कुछ दिन निर्जल भी रह सकता है, मात्र हवा पर !
किंतु चाहती जो तुम यह बढ़कर आँगन उर दे भर,
तो तुम इसके मूलों को डालो मिट्टी के भीतर !

यह सच है, वह किरण वरुणियों के पाता प्रिय चुंबन,
पर प्रकाश के साथ चाहिए प्राणी को रज का तम !
पौधे ही क्या, मानव भी यह भू-जीवी निःसंशय,
मर्म कामना के बिरवे मिट्टी में फलते निश्चय !

नव वधू के प्रति

दुग्ध पीत अधखिली कली सी
मधुर सुरभि का अंतस्तल,
दीप शिखा सी, स्वर्ण करों के
इन्द्र चाप का मुख मंडल !
शरद व्योम सी, शशि मुख का
शोभित लेखा लावण्य नवल,
शिखर स्रोत सी, स्वच्छ, सरल,
जो जीवन में बहता कल कल !

ऐसी हो तुम, सहज बोध की
मधुर सृष्टि, संतुलित, गहन,
स्नेह चेतना सूत्र में गुँथी
सौम्य, सुघर, जैसे हिमकण !
घुटनों के बल नहीं चली तुम,
धर प्रतीति के धीर चरण,
बड़ी हुई जग के आँगन में,
थामे रहा बाँह जीवन !

आती हो तुम, सौ सौ स्वागत,
दीपक बन घर की आओ,

श्री शोभा सुख स्नेह शांति की
मंगल किरणें बरसाओ !
प्रभु का आशीर्वाद तुम्हें, सेंदुर
सुहाग शाश्वत पाओ,
संगच्छध्वं के पुनीत स्वर
जीवन में प्रति पग गाओ !

छाया दर्पण

यह मेरा दर्पण चिर मोहित !
जीवन के गोपन रहस्य सब
इसमें होते शब्द तरंगित !

कितने स्वर्गिक स्वप्न शिखर,
माया की प्रिय घाटियाँ मनोरम,
इसमें जगते इन्द्रधनुष से
कितने रंगों के प्रकाश तम !

जो कुछ होता सिद्ध जगत में,
मन में जिसका उठता उपक्रम,
इस जादू के दर्पण में घटना
अदृश्य हो उठतीं चित्रित !

नंगे भूखों के क्रंदन पर
हँसता इसमें निर्मम शोषण,
आदर्शों के सौध बिखरते
खड़े जीर्ण जन मन में मोहन !

झंकृत इसमें, मानव आत्मा
उर उर में जो करती घोषण,
इस दर्पण में युग जीवन की
छाया गहरी पड़ी कलंकित !

दीख रहा उगता इसमें
मानव भविष्य का ज्योतित आनन,
मानव आत्मा जब धरती पर
विचरेगी धर ज्योति के चरण !

डूबेंगे नव मनुष्यत्व में
देश जाति गत कटु संघर्षण,
पाश मुक्त होगी यह वसुधा
मानव श्रम से बन मनुजोचित !

कौन युवक युवती, मानव की
घृणित विवशताओं से पीड़ित,
मानवता के हित निज जीवन
प्राण करेंगी सुख से अर्पित ?

(अंतर्बाह्य दैन्य दुःखों से
अगणित तन मन हैं परितापित!)
यह माया का दर्पण उनके
गौरव से होगा स्वर्णांकित !

मर्म कथा

बाँध दिए क्यों प्राण
प्राणों से !
तुमने चिर अनजान
प्राणों से !

गोपन रह न सकेगी
अब यह मर्म कथा,
प्राणों की न रुकेगी
बढ़ती विरह व्यथा,

विवश, फूटते गान,
प्राणों से !

यह विदेह प्राणों का बंधन,
अंतर्ज्वाला में तपता तन !
मुग्ध हृदय, सौन्दर्य ज्योति को
दग्ध कामना करता अर्पण !

नहीं चाहता जो कुछ भी आदान
प्राणों से !
बाँध दिए क्यों प्राण
प्राणों से !

प्रणय कुंज

तुम प्रणय कुंज में जब आई
पल्लवित हो उठा मधु यौवन
मंजरित हृदय की अमराई !

मलय हुआ मद चंचल
लहराया सरसी जल,
अलि गूँज उठे, पिक ध्वनि छाई !

अब वह स्वप्न अगोचर,
मर्म व्यथाऽ, मंथित करती अंतर,
प्राणों के दल झर झर
करते आकुल मर्मर !

चिर विरह मिलन में भर लाई !
तुम प्रणय कुंज में जब आई !

शरद चाँदनी

शरद चाँदनी !
विहँस उठी मौन अतल
नीलिमा उदासिनी !

आकुल सौरभ समीर
छल छल चल सरसि नीर,
हृदय प्रणय से अधीर,
जीवन उन्मादिनी !

अश्रु सजल तारक दल,
अपलक दृग गिनते पल,
छेड़ रही प्राण विकल
विरह वेणु वादिनी !

जगीं कुसुम कलि थर् थर्
जगे रोम सिहर सिहर,
शशि असि सी प्रेयसि स्मृति
जगी हृदय ह्लादिनी !
शरद चाँदनी !

मर्म व्यथा

प्राणों में चिर व्यथा बाँध दी !
क्यों चिर दग्ध हृदय को तुमने
वृथा प्रणय की अमर साध दी !

पर्वत को जल, दारु को अनल,
वारिद को दी विद्युत चंचल,
फूल को सुरभि, सुरभि को विकल
उड़ने की इच्छा अबाध दी !

हृदय दहन रे हृदय दहन,
प्राणों की व्याकुल व्यथा गहन !
यह सुलगेगी, होगी न सहन,
चिर स्मृति की श्वास समीर साथ दी !

प्राण गलेंगे, देह जलेगी,
मर्म व्यथा की कथा ढलेगी,
सोने सी तप, निकलेगी
प्रेयसि प्रतिमा, ममता अगाध दी !

प्राणों में चिर व्यथा बाँध दी !

गोपन

मैं कहता कुछ, रे बात और !
जग में न प्रणय को कहीं ठौर !

प्राणों की सुरभि बसी प्राणों में
बन मधु सिक्त व्यथा,
वह नीरव गोपन मर्म मधुर
वह सह न सकेगी लोक कथा;

क्यों वृथा प्रेम आया जग में
सिर पर काँटों का धरे मौर !

मैं कहता कुछ, रे बात और !

सौन्दर्य चेतना विरह मूढ़,
मधु प्रणय भावना बनी मूक,
रे हूक हृदय में भरती अब
कोकिल की नव मंजरित कूक !

काले अक्षर का जला प्रेम
लिखते कलियों में सटे भौंर !

मैं कहता कुछ, रे बात और !

स्वप्न बंधन

बाँध लिया तुमने प्राणों को फूलों के बंधन में
एक मधुर जीवित आभा सी लिपट गई तुम मन में !
बाँध लिया तुमने मुझको स्वप्नों के आलिंगन में !

तन की सौ शोभाएँ सन्मुख चलती फिरती लगतीं,
सौ सौ रंगों में, भावों में तुम्हें कल्पना रँगती,
मानसि, तुम सौ बार एक ही क्षण में मन में जगती !

तुम्हें स्मरण कर जी उठते यदि स्वप्न आँक उर में छबि,
तो आश्चर्य प्राण बन जावें गान, हृदय प्रणयी कवि ?
तुम्हें देख कर स्निग्ध चाँदनी भी जो बरसावे रवि !

तुम सौरभ सी सहज मधुर बरबस बस जाती मन में
पतझर में लाती वसंत, रस स्रोत विरस जीवन में,
तुम प्राणों में प्रणय, गीत बन जाती उर कंपन में !

तुम देही हो ? दीपक लौ सी दुबली, कनक छबीली,
मौन मधुरिमा भरी, लाज ही सी साकार लजीली,
तुम नारी हो ? स्वप्न कल्पना सी सुकुमार सजीली ?

तुम्हें देखने शोभा ही ज्यों लहरी सी उठ आई,
तनिमा, अंग भंगिमा बन मृदु देही बीच समाई !
कोमलता कोमल अंगों में पहिले तन धर पाई !

फूल खिल उठे, तुम वैसी ही मुझको दी दिखलाई,
सुंदरता वसुधा पर खिल सौ सौ रंगों में छाई,
छाया सी ज्योत्स्ना सकुची, प्रतिछबि सी उषा लजाई !

तुम में जो लावण्य मधुरिमा, जो असीम सम्मोहन,
तुम पर प्राण निछावर करने पागल हो उठता मन !
नहीं जानती क्या निज बल तुम, निज अपार आकर्षण ?

बाँध लिया तुमने प्राणों को प्रणय स्वप्न बंधन में,
तुम जानो, क्या तुमको भाया, मर्म छिपा क्या मन में,
इन्द्र धनुष बन हँसती तुम वाष्पों के जीवन घन में !

स्वप्न देही

स्वप्न देही हो गिये तुम,
देह तनिमा अश्रु धोई !
रूप की लौ सी सुनहली
दीप में तन के सँजोई !

सेज पर लेटी सुघर
सौन्दर्य छाया सी सुहाई,
काम देही स्वप्न सी
स्मृति तल्प पर तुम दी दिखाई !

कल्पना की मधुरिमा सी
भाव मृदुता में डुबोई !

देह में मृदु देह सी
उर में मधुर उर सी समाकर,
लिपट प्राणों से गई तुम
चेतना सी निपट सुंदर !

प्रेम पलकों पर अकल्पित
रूप की सी स्वप्न सोई !

विरल पट से झलक
विलुलित अलक करते हृदय मोहित,

सरित जल में तैरती ज्यों
नील घन छाया तरंगित !

काम वन में प्रणय ने हो
कामना की बेलि बोई !

लालसा तम से तुम्हारे
कुंतलों के जाल में भ्रम
क्यों न होता प्यार अंधा
छबि अपार निहार निरुपम !

मर्म की आकुल तृषा तुम
प्रणय श्वासों में पिरोई !

स्नेह प्रतिमा सी मनोरम
मर्म इच्छा से विनिर्मित,
हृदय शतदल में सतत
तुम झूलती अभिलाष स्पंदित !

सार तत्वों की बनी तुम
देह भूतों बीच खोई !

हृदय तारुण्य

आम्र मंजरित, मधुप गुंजरित,
गंध समीरण मंद संचरित !
प्राणों की पिक बोल उठी फिर
अंतर में कर ज्वाल प्रज्वलित !

डाल डाल पर दौड़ रही वह
ज्वाल रंग रंगों में कुसुमित,
नस नस में कर रुधिर प्रवाहित
उर में रस वश गीत तरंगित !

तन का यौवन नहीं, हृदय का
यौवन रे यह आज उच्छ्वसित,
फिर जग में सौन्दर्य पल्लवित
प्राणों में मधु स्वप्न जागरित !

आम्र मंजरित, मधुप गुंजरित,
गंध समीरण अंध संचरित !
प्राणों में पिक बोल उठी फिर
दिशि दिशि में कर ज्वाल प्रज्वलित !

प्रेम मुक्ति

एक धार बहता जग जीवन
एक धार बहता मेरा मन !
आर पार कुछ नहीं कहीं रे
इस धारा का आदि न उद्गम !

सत्य नहीं यह स्वप्न नहीं रे
सुप्ति नहीं यह मुक्ति न बंधन,
आते जाते विरह मिलन नित
गाते रोते जन्म मृत्यु क्षण !

व्याकुलता प्राणों में बसती
हँसी अधर पर करती नर्तन,
पीड़ा से पुलकित होता मन
सुख से ढलते आँसू के कण !

शत वसंत शत पतझर खिलते
झरते, नहीं कहीं परिवर्तन,
बँधे चिरंतन आलिंगन में
सुख दुख, देह-जरा उर-यौवन !

एक धार जाता जग जीवन
एक धार जाता मेरा मन,
अतल अकूल जलधि प्राणों का
लहराता उर में भर कंपन !

प्राणाकांक्षा

बज पायल छम
छम छम !
उर की कंपन में निर्मम
बज पायल छम
छम छम !

हृदय रक्त रंजित सुंदर
नृत्य मुग्ध प्रिय चरणों पर
प्राणों की स्वर्णाकांक्षा सम
प्रणय जड़ित, चंचल, निरुपम,

बज पायल छम
छम छम !

उद्वेलित हो जब अंतर
व्यथा लहरियों पर पग धर,
जीवन की गति लय से अक्लम
पद उन्मद, मत थम, मत थम,

बज पायल छम
छम छम !

साधना

जीवन की साधना,
असफल जो सफल बना,
सिद्धि सही चिर तपना !

जीवन की साधना !

विपदाएँ,
दुराशाएँ,
नष्ट मुझे कर जाएँ,
भ्रष्ट न हो पथ अपना !

चूर्ण हुई जो आशा,
पूर्ण न जो अभिलाषा,
चूर्ण हुई जो आशा—

भूषित हो उनसे मन,
लांछन से शशि शोभन,
सत्य बने जो स्वपना !

जीवन की साधना !

रस स्रवण

रस बन, रस बन,
प्राणों में !

निष्ठुर जग, निर्मम जीवन,
रस बन, रस बन,
प्राणों में !

अंतस्तल में व्यथा मथित हो,
भाव भंगि में ज्ञान ग्रथित हो,
गीति छंद में प्रीति रटित हो,

क्षण क्षण छन,
रस बन, रस बन,
प्राणों में !

तम से मुक्त प्रकाश उदित हो,
घृणा युक्त उर दया द्रवित हो,
जड़ता में चेतना अमृत हो,

गरज न घन,
रस बन, रस बन,
प्राणों में !

आवाहन

फिर वीणा मधुर बजाओ !
वाणी, नव स्वर में गाओ !

उर के कंपित तारों में
झंकार अमर भर जाओ !

उन्मेषित हो अंतर
स्पंदित प्राणों के स्तर,

नव युग के सौन्दर्य ज्वार में
जीवन तृषा डुबाओ !

ज्योतित हो मानव मन,
निर्मित नव भव जीवन,

देश जाति वर्णों से
निखरे नव मानवपन !

शोभा हो, श्री सुषमा,
धरणि स्वर्ग की उपमा,

दिव्य चेतना की जग में
स्वर्णिम किरणें बरसाओ !

फिर वीणा मधुर बजाओ !

अंतर्लोक

यह वह नव लोक
जहाँ भरा रे अशोक
सूक्ष्म चिदालोक !

शोभा के नव पल्लव,
झरता नभ से मधुरव;
शाश्वत का पा अनुभव
मिटता उर शोक,
स्वर्ग शांति ओक !

रूप रेख जग की लय
बनती वर देवालय,
श्रद्धा में विकसित भय,
भक्ति मधुर सुख दुख द्वय !

बनता संशय
चिर विश्वास, नहीं रोक,
कांति लो विलोक !

यह वह वर लोक
हृदय में उदय अशोक,
सूक्ष्म चिदालोक !
स्वर्ण शांति ओक !

स्वर्ग अप्सरी

सरोवर जल में स्वर्ण किरण
रे आज पड़ी ज्वलित वरण !

अतल से हँसी उमड़ कर
लसी लहरों पर चंचल,
तीर सी धँसी किरण वह
ज्योति बसी प्राणों में निस्तल !

उड़ रहे रश्मि पंख कण
जगमगाए जीवन क्षण !

सजल मानस में मेरे
अप्सरी कैसे एरे,
स्वर्ग से गई उतर
कब जाने तिर भीतर ही भीतर !

आज शोभा शोभा जल
ज्योति में उठा अखिल जल,
सहज शोभा ही का सुख
लोट रहा लहरों में प्रतिपल !

जागती भावों में छबि,
गारहा प्राणों में कवि,

चेतना में कोमल
आलोक पिघल
ज्यों स्वतः गया ढल !

हृदय सरसी के जल कण
सकल रे स्वर्ण के वरण,
ज्योति ही ज्योति अतल जल
डूब गए चिर जन्म औ' मरण !

प्रीति निर्झर

यहाँ तो झरते निर्झर
स्वर्ण किरणों के निर्झर,
स्वर्ग सुषमा के निर्झर
निस्तल हृदय गुहा में
नीरव प्राणों के स्वर !

ज्ञान की कांति से भरे
भक्ति की शांति से भरे,
गहन श्रद्धा प्रतीति के
स्वर्णिम जल में तिरते
सतत सत्य शिव सुंदर !

अश्रु मज्जित जीवन मुख,
स्वप्न रंजित रे सुख दुख,
रहस आनंद तरंगित
सहज उच्छ्वसित हृदय सरोवर !

गान में भरा निवेदन
प्राण में भरा समर्पण,
ध्यान में प्रिय के दर्शन,
प्रिय ही प्रिय रे व्याप्त
अहर्निशि भीतर बाहर !

यहाँ तो झरते निर्झर
स्वर्ण के सौ सौ निर्झर,
स्वर्ग शोभा के निर्झर
उमड़ उमड़ उठता
प्रतीति के सुख से अंतर !

मातृ शक्ति

दिव्यानने,
दिव्य मने,
भव जीवन पूर्ण बने !
दिव्यानने !

आभा सर
लोचन वर
स्नेह सुधा सागर !

स्वर्ग का प्रकाश
हास
करता उर तम विनाश,
किरणें बरसा कर !

भय भंजने,
जन रंजने !

तुम्हीं भक्ति
तुम्हीं शक्ति
ज्ञान ग्रथित सदनुरक्ति !

चिर पावन
सृजन चरण,

अर्पित तन
मन जीवन !

हृदयासने,
श्री वसने !

प्रणाम

श्री अरविन्द, सभक्ति प्रणाम !

स्वर्मानस के ज्योतित सरसिज,
दिव्य जगत जीवन के वर द्विज,
चिदानंद के स्वर्णिम मनसिज,
ज्योति धाम,
सज्ञान प्रणाम !

विश्वात्मा के नव विकास तुम,
परम चेतना के प्रकाश तुम,
ज्ञान भक्ति श्री के विलास तुम,
पूर्ण प्रकाम,
सकर्म प्रणाम !

दिव्य तुम्हारा परम तपोबल
अमृत ज्योति से भर दे भूतल,
सफल मनोरथ सृष्टि हो सकल,
श्री ललाम,
निष्काम प्रणाम !

मातृ चेतना

तुम ज्योति प्रीति की रजत मेघ,
भरती आभा स्मिति मानस में,
चेतना रश्मि तुम बरसातीं
शत तड़ित अर्चि भर नस नस में !

तुम उषा, तूलि की ज्वाला से
रँग देती जग के तम भ्रम को,
वह प्रतिभा, स्वर्णांकित करती
संसृति के जो विकास क्रम को !

तुम सृजन शक्ति, जो ज्योति चरण धर
रजत बनाती रज कण को,
जड़ में जीवन, जीवन में मन,
मन में सँवारती स्वर्मन को !

तुम जननि, प्रीति की स्त्रोतस्विनि,
तुम दिव्य चेतना, दिव्य मना,
तुम स्वर्ण किरण की निर्झरिणी,
आभा देही, आभा वसना !

मुख पर हिरण्यमय अवगुंठन
प्राणों का अर्पित तुमको मन,
स्वीकृत हों तुम्हें स्पर्शमणि, यह,
स्वर्णिम हों मेरे जीवन क्षण !

अंतर्विकास

विभा, विभा,
जगत ज्योति तमस द्विभा !

झरता तम का बादल
इंद्रधनुष रँग में ढल,
ओझल हँस इंद्रधनुष
केवल फिर चिर उज्वल
विभा !
मनस रूप भाव द्विभा !

इंद्रियाँ स्वरूप जड़ित,
रूप भाव बुद्धि जनित,
भाव दुःख सुख कल्पित,
ज्ञान भक्ति में विकसित,
विभा !
जीवन भव सृजन द्विभा !

सृजन शील जग विकास,
जड़ जीवन मनोभास,
आत्माहम्, परे मुक्ति,
स्वर्ण चेतना प्रकाश,
विभा !
जन्म मरण मात्र द्विभा !

प्रतीति

विहगों का मधुर स्वर
हृदय क्यों लेता हर ?
क्यों चपल जल लहर
तन में भरती सिहर ?
तुमसे !

नीला सूना सा नभ
देता आनंद अलभ,
ऊषा संध्या द्वाभा
स्वर्ण प्रभ,
तुमसे !

यह विरोध वारिधि जग
शूल फूल सँग प्रतिपग,
लगता प्रिय मधुर सुभग,
तुमसे !

लुटे वर द्वार मान,
छुटें तन मन प्राण,
कहता है बार बार
मानव हृदय पुकार,
रह सकूँगा निराधार
तुमसे !

आशाएँ हों न पूर्ण
अभिलाषा अखिल चूर्ण,
जीवन बन जाय भार
सूख जाय स्नेह धार,
विजय बनेगी हार
तुमसे !

सार्थकता

वसुधा के सागर से
उठता जो बाष्प भार
बरसता न वसुधा पर
बन उर्वर वृष्टि धार,
सार्थक होता ?

तूने जो दिया मुझे
अमर चेतना का दान
तेरी ओर मेरा प्यार
होता न धावमान,
सार्थक होता ?

घुमड़ता छायाकाश,
गरजता अंधकार
मृत्यु बाहुओं में बँधी
चेतना करती पुकार,
सार्थक होता ?

मर्त्य रहे, स्वर्ग रहे,
सृष्टि का आवागमन,
प्राणों में बना रहे
तेरा चिर रहस मिलन,
जीवन सार्थक होगा !

कुंठित

तुम्हें नहीं देता यदि अब सुख
चंद्रमुखी का मधुर चंद्रमुख;
रोग जरा औ' मृत्यु देह में,-
जीवन चिन्तन देता यदि दुख,
आओ प्रभु के द्वार !

जन समाज का वारिधि विस्तृत
लगता अचिर फेन से मुखरित,
हँसी खेल के लिए तरंगें
तुम्हें न यदि करतीं आमंत्रित,
आओ प्रभु के द्वार !

मेघों के सँग इन्द्रचाप स्मित
यदि न कल्पना होती धावित,
शरद वसंत नहीं हरते मन
शशिमुख दीपित, स्वर्ण मंजरित,
आओ प्रभु के द्वार !

प्राप्त नहीं जो ऐसे साधन
करो पुत्र दारा का पालन,
पौरुष भी जो नहीं कर सको
जन मंगल, जनगण परिचालन
आओ प्रभु के द्वार !

संभव है, तुम मन के कुंठित,
संभव है, तुम जग से लुंठित,
तुम्हें लोह से स्वर्ण बना प्रभु
जग के प्रति कर देंगे जीवित,
आओ प्रभु के द्वार !

आर्त

आवें प्रभु के द्वार !
जो जीवन में परितापित हैं,
हतभागे, हताश, शापित हैं,
काम क्रोध मद से त्रासित हैं,
आवें वे, आवें वे प्रभु के द्वार !
बहती है जिनके चरणों से पतित पावनी धार !
जो भू के, मन के वासी हैं,
स्त्री धन जन यश फल आशी हैं,
ज्ञान भक्ति के अभिलाषी हैं,
आवें वे, आवें वे प्रभु के द्वार !
प्रभु करुणा के, महिमा के हैं मेघ उदार !
पांथ न जो आगे बढ़ सकते,
सुख में थकते, दुख में थकते,
टेढ़े मेढ़े कुंठित लगते,
आवें वे, आवें वे प्रभु के द्वार !
पूर्ण समर्पण करदें प्रभु को, लेंगे सकल सँवार !
सब अपूर्ण खंडित इस जग में,
फूलों से काँटे ही मग में,
मृत्यु साँस में, पीड़ा रग में,
आवें हे, आवें सब प्रभु के द्वार !
केवल प्रभु की करुणा ही है अक्षय पूर्ण उदार ?

चेतन

गगन में इंद्रधनुष,
अवनि में इंद्रधनुष !

नयन में दृष्टि किरण,
श्रवण में शब्द गगन,
हृदय के स्तर स्तर में
उदित वह दिव्य वपुष !

अचित् का चिर जहाँ तम,
दुरित जड़ता औ' भ्रम,
जगत जीवन अमा में
सुवित वह ज्योति पुरुष !

तमस में गिर न रँगा,
नींद से पुनः जगा,
मरण के आवरण से
प्रकट वह चिर अकलुष !

तृणों में इंद्रधनुष,
कणों में इंद्रधनुष,
स्पर्श पा चेतन का
जग उठे शत नहुष !

मृत्युंजय

ईश्वर को मरने दो हे मरने दो,
वह फिर जी उट्ठेगा, ईश्वर को मरने दो !
वह क्षण क्षण मरता, जी उठता,
ईश्वर को नित नव स्वरूप धरने दो !

शत रूपों में, शत नामों में, शत देशों में,
शत सहस्रबल होकर उसे सृजन करने दो,
क्षण अनुभव के विजय पराजय जन्म मरण
औ' हानि लाभ की लहरों में उसको तरने दो !
ईश्वर को मरने दो हे, फिर फिर मरने दो !

दूर नहीं वह तन से, मन से या जीवन से,
अथवा रे जनगण से !
द्वेष कलह संग्राम बीच वह,
अंधकार से औ' प्रकाश से शक्ति खींच वह
पलता, बढ़ता, विकसित होता अहरह
अपने दिव्य नियम से !

दूर नहीं वह तन से, मन से, जीवन से
अथवा जनगण से !

एक दृष्टि से, एक रूप में, देख रहे हम
इस भूमा को, जग को, औ' जग के जीवन को निश्चय,

इसमें सुख दुख जरा मरण हैं, जड़ चेतन,
संघर्ष शांति,—यह रे द्वन्द्वों का आशय !

परम दृष्टि से, परम रूप में यह है ईश्वर,
अजर अमर औ' एक अनेक, सर्वगत, अक्षर,
व्यक्ति विश्व जड़ स्थूल सूक्ष्मतर !

स प्रत्यगात् शुक्रमकायमव्रणम्
अश्नाविंर शुद्धमपापविद्धम्,
कविर्मनीषी परिभू स्वयंभू,—पूर्ण परात्पर !

मरने दो तब ईश्वर को मरने दो हे,
वह जी उट्ठेगा, ईश्वर को मरने दो !
वह फिर फिर मरता, जी उठता,
ईश्वर को चिर मुक्त सृजन करने दो !

अविच्छिन्न

हे करुणाकर, करुणा सागर !

क्यों इतनी दुर्बलताओं का
दीप शून्य गृह मानव अंतर !
दैन्य पराभव आशंका की
छाया से विदीर्ण, चिर जर्जर !

चीर हृदय के तम का गह्वर
स्वर्ण स्वप्न जो आते बाहर
गाते वे किस ज्योति प्रीति
आशा के गीत प्रतीति से मुखर ?

तुम अपनी आभा में छिपकर
दुर्बल मनुज बने क्यों कातर !
यदि अनंत कुछ इस जग में
वह मानव का दारिद्र्य भयंकर !

अखिल ज्ञान संकल्प मनोबल
पलक मारते होते ओझल,
केवल रह जाता अथाह नैराश्य,
क्षोभ, संघर्ष निरंतर !

देव पूर्ण निज रूपों में स्थित,
पशु प्रसन्न जीवन में सीमित,

मानव की सीमा अशांत
छूने असीम के छोर अनश्वर !

एक ज्योति का रूप यह तमस,
कूप वारि सागर का अंभस् ,
यह उस जग का अंधकार
जिसमें शत तारा चंद्र दिवाकर !

चित्रकरी

जीवन चित्रकरी हे
सृजन आनंद परी हे,

करो कुसुमित वसुधा पर
स्वर्ण की किरण तूलि धर
नव्य जीवन सौन्दर्य अमर
जग की छबि रेखाओं में
रूप रंग भर !

सूक्ष्म दर्शन से प्रेरित
करो जग जीवन चित्रित,
मधुर मानवता का मुख
अंतर आभा से कर मंडित !

जीवन चित्रकरी हे,
सृजन सौन्दर्य परी हे,

खोगए भेदों में जन
अहम् में सुप्त अब परम,
प्रेम विश्वास शौर्य,
स्वर्णिम आशा से भर दो जन मन !

अरुण अनुराग रँगो घन,
शांति के शुभ्र हों वसन;
हरित रँग शक्ति, पीत रँग भक्ति,
ज्ञान का नील हो गगन!

जीवन चित्रकरी है,
सृजन ऐश्वर्य परी है,

देह सौन्दर्य गठित हो,
प्राण आनंद सरित हों
दृष्टि नव स्वप्न जड़ित हो,

स्वर्ण चेतना से जग जीवन
आलोकित हो!

निर्झर

तुम, झरो हे निर्झर
प्राणों के स्वर,
झरो हे निर्झर !

चिर अगोचर
नील शिखर,
मौन शिखर....

तुम प्रशस्त मुक्त मुखर,—
झरो धरा पर
भरो धरा पर
नव प्रभात, स्वर्ग स्नात,
सद्य सुघर !

झरो हे निर्झर,
प्राणों के स्वर,
झरो हे निर्झर !

ज्योति स्तंभ सदृश उतर
जग में नव जीवन भर,
उर में सौन्दर्य अमर,

स्वर्ण ज्वार से निर्भर
झरो धरा पर
भरो धरा पर
तपः पूत नवोद्भूत
चेतना वर !

झरो हे निर्झर !

अंतर्वाणी

निः स्वर वाणी,
नीरव मर्म कहानी !
अंतर्वाणी !

नव जीवन सौन्दर्य में ढलो,
सृजन व्यथा गांभीर्य में गलो,
चिर अकलुष बन विहँसो हे
जीवन कल्याणी,
निःस्वर वाणी !

व्यथा व्यथा
रे जगत की प्रथा,
जीवन कथा
व्यथा !

व्यथा मथित हो
ज्ञान ग्रथित हो,
सजल सफल चिर सबल बनो हे
उर की रानी,
निः स्वर वाणी !

व्यथा हृदय में
अधर पर हँसी,

बादल में
शशि रेख हो लसी !

प्रीति प्राण में
अमर हो बसी,
गीत मुग्ध हो जग के प्राणों,
निःस्वर वाणी !

ज्योति झर

बरसो ज्योति अमर
तुम मेरे भीतर बाहर,
जग के तम से निखर निखर
बरसो हे जीवन ईश्वर !

झरते मोती के शत निर्झर
शैल शिखर से झर झर,
फूटें मेरे प्राणों से भी
दिव्य चेतना के स्वर !

तन मन के जड़ बंधन टूटें
जीवन रस के निर्झर छूटें,
प्राणों का स्वर्णिम मधु लूटें
मुग्ध निखिल नारी नर !

विघ्नों के गिरि शृंग गिरें
चिर मुक्त सृजन आनंद झरे,
फिर नव जीवन सौन्दर्य भरे
जग के सरिता सर सागर !

बरसो जीवन ज्योति हे अमर
दिव्य चेतना की सावन झर,
स्वर्ण काल के कुसुमित अक्षर
फिर से लिख वसुधा पर !

मुक्ति बंधन

क्यों तुमने निज विहग गीत को
दिया न जग का दाना पानी,
आज आर्त अंतर से उसके
उठती करुणा कातर वाणी !

शोभा के स्वर्णिम पिंजर में
उसके प्राणों को बंदी कर,
तुमने ज्यों उसके जीवन की
जीव मुक्ति ली पल भर में हर !

नीड़ बनाता वह डाली पर,
फिरता आँगन में कलरव भर,
उसे प्रीति के गीत सिखाने
दग्ध कर दिया तुमने अंतर !

उड़ता होता क्या न गगन में ?
चुगता होता दाने भू पर,
अपना उसे बनाने तुमने,
लिए जीव के पंख ही कुतर !

क्यों तुमने निज गीत विहग को
दिया न भू का दाना पानी,
उसके आर्त हृदय से फिर फिर
उठती सुख की कातर वाणी !

लक्ष्मण

विश्व श्याम जीवन के जलधर,
राम प्रणम्य, राम हैं ईश्वर !
लक्ष्मण निर्मल स्नेह सरोवर
करुणा सागर से भी सुंदर !

सीता के चेतना जागरण
राम हिमालय से चिर पावन,
मेरे मन के मानव लक्ष्मण
ईश्वरत्व भी जिन्हें समर्पण !

धीर वीर अपने पर निर्भर
झुका अहं धनु, धर सेवा शर,
कब से भू पर रहे वे विचर
लक्ष्मण सच्चे भ्राता, सहचर !

युग युग से चिर असि व्रत चारी,
जग जीवन विघ्नों के हारी,
जन सेवा उनकी प्रिय नारी
वह ऊर्मिला, हृदय को प्यारी !

रुधिर वेग से कंपित थर थर
पकड़ ऊर्मिला का पल्लव कर
बोले, 'प्रिये, बिदा दो हँसकर
संग राम के जाता अनुचर !'

चौदह बरस रहे वह बाहर
बिछुड़े नहीं प्रिया से क्षण भर,
सजग ऊर्मिला थी उर भीतर
मानस की सी ऊर्मि निरंतर !

स्नेह ऊर्मिला का चिर निश्छल
नहीं जानता विरह मिलन पल,
वह बह बह अंतर में अविरल
बनता रहता सेवा मंगल !

वह सेवा कर्तव्य नहीं है,
वह भीतर से स्वतः बही है,
हार्दिकता की सरित रही है,
जिससे निश्चित हरित मही है !

सहज सलज्ज सुशील स्नेहमय,
जन जन के साथी, चिर सहृदय,
मुक्त हृदय, विनम्र, अति निर्भय,
जन्म जन्म का हो ज्यों परिचय;

आते वे सन्मुख प्रसन्न मन
भू पर नत आनंद के गगन,—
बरस गया जिसका ममत्व घन;
गौर चाँदनी सा चेतन तन !

ऐसे भू के मानव लक्ष्मण
कभी गा सकूँ उनका जीवन,
छू जिनके सेवा निरत चरण
बिछ जाते पथ शूल फूल बन !

राम पतित पावन, दुख मोचन,
लक्ष्मण भव सुख दुख में शोभन !
वे सर्वज्ञ, सर्वगत, गोपन,
ज्ञान मुक्त ये, पद नत लोचन !

१५ अगस्त १९४७

चिर प्रणम्य यह पुण्य अहन्, जय गाओ सुरगण,
आज अवतरित हुई चेतना भू पर नूतन !
नव भारत, फिर चीर युगों का तमस आवरण,
तरुण अरुण सा उदित हुआ परिदीप्त कर भुवन !
सभ्य हुआ अब विश्व, सभ्य धरणी का जीवन,
आज खुले भारत के सँग भू के जड़ बंधन !
शांत हुआ अब युग युग का भौतिक संघर्षण
मुक्त चेतना भारत की यह करती घोषण !

आम्र मौर लाओ हे, कदली स्तंभ बनाओ,
ज्योतित गंगा जल भर मंगल कलश सजाओ !
नव अशोक पल्लव के बंदनवार बँधाओ,
जय भारत गाओ, स्वतंत्र जय भारत गाओ !
उन्नत लगता चंद्र कला स्मित आज हिमाचल,
चिर समाधि के जाग उठे हों शंभु तपोज्वल !
लहर लहर पर इंद्रधनुष ध्वज फहरा चंचल
जय निनाद करता, उठ सागर, सुख से विह्वल !

धन्य आज का मुक्ति दिवस, गाओ जन-मंगल,
भारत लक्ष्मी से शोभित फिर भारत शतदल !
तुमुल जयध्वनि करो, महात्मा गांधी की जय,
नव भारत के सुज्ञ सारथी वह निःसंशय !
राष्ट्र नायकों का हे पुनः करो अभिवादन,
जीर्ण जाति में भरा जिन्होंने नूतन जीवन !

स्वर्ण शस्य बाँधो भू वेणी में युवती जन,
बनो वज्र प्राचीर राष्ट्र की, मुक्त युवकगण !
लोह संगठित बने लोक भारत का जीवन,
हों शिक्षित संपन्न क्षुधातुर नग्न भग्न जन !
मुक्ति नहीं पलती दृग जल से हो अभिसिंचित,
संयम तप के रक्त स्वेद से होती पोषित !
मुक्ति माँगती—कर्म वचन मन प्राण समर्पण,
वृद्ध राष्ट्र को वीर युवकगण दो निज यौवन !

नव स्वतंत्र भारत हो जग हित ज्योति जागरण,
नव प्रभात में स्वर्ण स्नात हो भू का प्रांगण !
नव जीवन का वैभव जाग्रत हो जनगण में,
आत्मा का ऐश्वर्य अवतरित मानव मन में !
रक्त सिक्त धरणी का हो दुःस्वप्न समापन,
शांति प्रीति सुख का भू स्वर्ग उठे सुर मोहन !
भारत का दासत्व दासता थी भू-मन की;
विकसित आज हुईं सीमाएँ जग जीवन की !

धन्य आज का स्वर्ण दिवस, नव लोक जागरण,
नव संस्कृति आलोक करे जन भारत वितरण !
नव जीवन की ज्वाला से दीपित हों दिशि क्षण,
नव मानवता में मुकुलित धरती का जीवन !

ध्वजा वंदना

फहराओ, तिरंग, फहराओ !
हिन्द चेतना के जाग्रत ध्वज,
ज्योति तरंगों में लहराओ !

इंद्र धनुष से गर्जन घन में,
पौरुष से जग जीवन रण में,
जन स्वतंत्रता के प्रांगण में
विजय शिखा से उठ, छहराओ !

उठते तुम, उठते दृग अपलक,
स्वाभिमान से उठते मस्तक,
उठते बहु भुज चरण अचानक,
लोहे की दीवार गरजती
हमें त्याग का पथ दिखलाओ !

तुम्हें देख जन मन निर्भय हो,
धरती पर नव स्वर्णोदय हो,
आत्म विजय ही विश्व विजय हो,
जब जब जग में लोक क्रांति हो
तुम प्रकाश किरणें बरसाओ !

आर्षवाणी

दीपशिखा महादेवी को

दीपशिखे, तुमने जल जल कर ऊर्ध्व ज्योति की वर्षण,
ये आलोक ऋचाएँ तुमको करता सहज समर्पण !

ज्योति वृषभ

स्वर्ण शिखर से चतुश्शृंग हैं उसके शिर पर,
दो उसके शुभ शीर्ष : सप्त रे ज्योति हस्त वर !
तीन पाद पर खड़ा, मर्त्य इस जग में आकर
त्रिधा बद्ध वह वृषभ, रँभाता है दिग्ध्वनि भर !

महादेव वह : सत्य : पुरुष औ' प्रकृति शीर्ष द्वय,
चतुश्शृंग सच्चिदानंद विज्ञान ज्योतिमय !
सप्त चेतना-लोक, हस्त उसके निःसंशय,
महादेव वह : सत्य : ज्योति का वृष वह निश्चय !

सत् रज तम से त्रिधा बद्ध, पद अन्न प्राण मन,
मर्त्य लोक में कर प्रवेश वह करता रंभण !
महादेव वह : सत्य : मुक्ति के लिए अनामय
फिर फिर हंभा रव करता : जय, ज्योति वृषभ, जय !

अग्नि

दीप्त अभीप्से, मुझको तू ले जा सत्पथ पर,
यज्ञ कुंड हो मेरा हृदय, अग्नि हे भास्वर !
प्राण बुद्धि मन की प्रदीप्त घृत आहुति पाकर
मेरी ईप्सा को पहुँचा दे परम व्योम पर !

तू भुवनों में व्याप्त, निखिल देवों की ज्ञाता,
यज्ञ अंश के भागी वे, तू उनकी त्राता !
निशि दिन बुद्धि कर्म की हवि दे, भूरि कर नमन,
आते हम तेरे समीप, हे अग्नि, प्रतिक्षण !

निज यज्ञों में मरणशील हम करते पूजन
उस अमर्त्य का जो सब के अंतर में गोपन !
यदि तू मैं, मैं तू बन जाऊँ, शिखे ज्योतिमय,
तो तेरे आशीष सत्य हों, जीवन सुखमय !

मन से, ज्ञान रश्मियों से कर तुझे प्रज्वलित
हम सद्बुद्धि, तेज, सत्कर्मों को पाते नित।
जिन जिन देवों का करते हम अहर्निशि यजन
वे शाश्वत विस्तृत हवि तुझको अग्नि, समर्पण !

ज्योति प्रचेता, निहित अकवियों में तू कवि बन,
मर्त्यों में तू अमृत, वरुण के हरती बंधन !

कैसे तुझे प्रसन्न करें हम, वरें दीप्त मन,
ज्ञात नहीं पथ, प्राप्त नहीं तप, बल या साधन !
कौन मनीषा यज्ञ भेंट दें, कौन हवि, स्तवन,
जिससे अग्नि, शिखा तेरी कर सके मन वहन !

काल अश्व

काल अश्व यह, तपः शक्ति का रूप चिर अजर,
दिशा पृष्ठ पर धावमान, अति दिव्य वेग भर !
महावीर्य यह, सप्त रश्मियों से हो शोभित
चला रहा भव को सहस्रधुर, प्राण से श्वसित !
भुवन भुवन सब घूम रहे चक्रों से अविरत,
महा अश्व यह, खींच रहा अश्रांत विश्व रथ !

अंतर्द्रष्टा ऋषि, त्रिकाल दर्शी जो कविगण,
इस पर करते धीर विपश्चित ही आरोहण !
निष्ठुर विधि से पीड़ित जग के शेष चराचर
परिवर्तन चक्रों में पिसकर होते जर्जर !
नाम रूप में ही जिनका मन मोहित सीमित
प्रबल पदाघातों से वे नित होते मर्दित !

काल बोध विस्तृत करता मन को, देता बल,
निखिल वस्तुएँ तथा घटनाएँ जग में केवल !
बहिरंतर जो निज को कर सकते संयोजित
नहीं व्यापती काल अश्वगति उनको निश्चित !
अथवा जो निर्द्वन्द्व, शुद्ध, निर्लिप्त, ऊर्ध्वचित,
दिव्य तुरग पर चढ़, जाते वे पार आत्मजित !

देव काव्य

तरुण युवक वह, कर्मों में था जिसके कौशल,
रण में अरियों के मद को करता था हत बल;
पलित वृद्ध उसको जाता है आज रे निगल,
मृतक पड़ा वह वीर, साँस लेता था जो कल !
इस महत्वमय देव काव्य को देखो प्रतिपल,
क्षण भंगुर यह विश्व, काल का मात्र रे कवल !

चंद्र,सूर्य की आभा में, ज्यों हो जाता लय,
प्राण इंद्रियाँ आत्मा में मिलतीं निः संशय !
नित्य, इंद्रियों से अतीत, आत्मा का जीवन
अमृत नाभि जो अन्न प्राण मन की चिर गोपन !
व्यक्ति केन्द्र है, विश्व परिधि, सत्ता रे अक्षय,
सृजन शील परिवर्तन नियम सनातन निश्चय !
नाम रूप परिधान पुरुष के मात्र रे वसन
आत्मवान् होते न काल के दशन के अशन !

दिव्य पुरुष जो अति समीप, अंतरतम में स्थित,
नहीं देख पाते जन उसको, वह अभिन्न नित !
देखो उसके दिव्य काव्य को संसृति-विस्तृत,
वह न कभी मरता, न जीर्ण होता, वेदामृत !

देव

कर्म निरत जन ही देवों से होते पोषित,
निरलस रे वे स्वयं, अहर्निशि रहते जाग्रत !
दिति पुत्रों को अदिति सुतों के कर चिर आश्रित
मैंने अपने को देवों को किया समर्पित !

देवों का है तेज गभीर, सिन्धु सा विस्तृत,
वे महान सब से, विनम्रता से चिर भूषित !
मानव, तुम शत हस्त करो वैभव एकत्रित,
औ' सहस्र कर होकर उसे करो नित वितरित !

इस प्रकार सब पुण्य करो अपने में संचित,
अपने कृत क्रियमाण कर्म चिर कर संयोजित !
गाँवों के पशु तजते ज्यों वन पशुओं का पथ
पाप कर्म तुम छोड़, रहो सत्कर्मों में रत !

साथ चलो, सब के हित बोलो, बनो संगठित,
साथ मनन कर, करो समान गुणों को अर्जित !
एक ज्ञान औ' एक प्राण सब रहो सम्मिलित,
तुम देवों के तुल्य बनो, सहयोग समन्वित !

व्रत से दीक्षा, दीक्षा से दक्षिणा ग्रहण कर
उससे श्रद्धा, श्रद्धा से कर प्राप्त सत्य वर,
ऋतंभरा प्रज्ञा से भर निज ज्योतित अंतर
तुम देवों के योग्य बनो औ' मर्त्य से अमर !

देव काव्य

तरुण युवक वह, कर्मों में था जिसके कौशल,
रण में अरियों के मद को करता था हत बल;
पलित वृद्ध उसको जाता है आज रे निगल,
मृतक पड़ा वह वीर, साँस लेता था जो कल!
इस महत्वमय देव काव्य को देखो प्रतिपल,
क्षण भंगुर यह विश्व, काल का मात्र रे कवल!

चंद्र,सूर्य की आभा में, ज्यों हो जाता लय,
प्राण इंद्रियाँ आत्मा में मिलतीं निः संशय!
नित्य, इंद्रियों से अतीत, आत्मा का जीवन
अमृत नाभि जो अन्न प्राण मन की चिर गोपन!
व्यक्ति केन्द्र है, विश्व परिधि, सत्ता रे अक्षय,
सृजन शील परिवर्तन नियम सनातन निश्चय!
नाम रूप परिधान पुरुष के मात्र रे वसन
आत्मवान् होते न काल के दशन के अशन!

दिव्य पुरुष जो अति समीप, अंतरतम में स्थित,
नहीं देख पाते जन उसको, वह अभिन्न नित!
देखो उसके दिव्य काव्य को संसृति-विस्तृत,
वह न कभी मरता, न जीर्ण होता, वेदामृत!

देव

कर्म निरत जन ही देवों से होते पोषित,
निरलस रे वे स्वयं, अहर्निशि रहते जागृत !
दिति पुत्रों को अदिति सुतों के कर चिर आश्रित
मैंने अपने को देवों को किया समर्पित !

देवों का है तेज गभीर, सिन्धु सा विस्तृत,
वे महान सब से, विनम्रता से चिर भूषित !
मानव, तुम शत हस्त करो वैभव एकत्रित,
औ' सहस्र कर होकर उसे करो नित वितरित !

इस प्रकार सब पुण्य करो अपने में संचित,
अपने कृत क्रियमाण कर्म चिर कर संयोजित !
गाँवों के पशु तजते ज्यों वन पशुओं का पथ
पाप कर्म तुम छोड़, रहो सत्कर्मों में रत !

साथ चलो, सब के हित बोलो, बनो संगठित,
साथ मनन कर, करो समान गुणों को अर्जित !
एक ज्ञान औ' एक प्राण सब रहो सम्मिलित,
तुम देवों के तुल्य बनो, सहयोग समन्वित !

व्रत से दीक्षा, दीक्षा से दक्षिणा ग्रहण कर
उससे श्रद्धा, श्रद्धा से कर प्राप्त सत्य वर,
ऋतंभरा प्रज्ञा से भर निज ज्योतित अंतर
तुम देवों के योग्य बनो औ' मर्त्य से अमर !

पुरुषार्थ

कभी न पीछे हटने वाले ही पाते जय,
बहिरंतर के ऐश्वर्यों का करते संचय!
वह प्रतिजन का हो अथवा सामूहिक वैभव
ऐहिक आत्मिक सुख पुरुषार्थी के हित संभव!

ठुकरा सकते वीर मृत्यु-पद जो पग पग पर
आत्म त्याग, उत्सर्ग हेतु जो रहते तत्पर,
दीर्घ विशद विस्तृत जीवन धारण कर निश्चय
धान्य प्रजा संयुक्त सदा बनते समृद्धिमय।

शुद्ध चित्त बन, दीप्त अभीप्सा हवि कर अर्पित
विश्व यज्ञ में, बनें मनुज सब अमृत, मृत्युजित्!
उठें सत्य से प्रेरित होकर दुर्बल, पीड़ित,
बनें सत्य के सन्मुख सत्ताधारी विनमित!

ऋत की रे संपदा शुद्ध, निष्कलुष, सनातन,
सुनता है आह्वान सत्य का बधिर भी श्रवण!
दुह सुहस्त गोधुक कोई, सुदुघा गो को नित
हमें पिलावे सविता का रस, ऋत दुग्धामृत!

अंतर्गमन

दाँई बाँई ओर, सामने पीछे निश्चित
नहीं सूझता कुछ भी : बहिरंतर तमसावृत !
हे आदित्यो, मेरा मार्ग करो चिर ज्योतित,
धैर्य रहित मैं, भय से पीड़ित, अपरिपक्व चित !

विविध दृश्य शब्दों की माया गति से मोहित
मेरे चक्षु श्रवण हो उठते मोह से भ्रमित !
विचरण करता रहता चंचल मन विषयों पर
दिव्य हृदय की ज्योति बहिर्मुख गई है बिखर !

तेजहीन मैं, क्या उत्तर दूँ, करूँ क्या मनन,
मैं खो गया विविध द्वारों से कर बहिर्गमन !
भरते थे सुन्दर उड़ान जो पत्ती प्रतिक्षण
प्रिय था जिन इंद्रियों को सतत रूप संगमन,

आज श्रांत हो, विषयाघातों से हो कातर
तुम्हें पुकार रहीं वे, ज्योति मनस् के ईश्वर !
रूप पाश में बद्ध, ज्ञान में अपने सीमित,
इन्द्र, तुम्हारी अमित ज्योति के हित उत्कंठित !

प्रार्थी वे : हे देव, हटा यह तमस आवरण,
ज्ञान लोक में आज हमारे खोलो लोचन !

ज्योति पुरुष तुम जहाँ, दिव्य मन के हो स्वामी,
निखिल इंद्रियों के परिचालक, अंतर्यामी !
ऋत चित् से है जहाँ सूक्ष्म नभ चिर आलोकित,
उस प्रकाश में हमें जगाओ, इन्द्र, अपरिमित !

एकं सत्

इन्द्रदेव तुम, स्वभू सत्य, सर्वज्ञ, दिव्य मन,
स्वर्ग ज्योति चित् शक्ति मर्त्य में लाते अनुक्षण !
ऋभुओं से त्रय रचित तुम्हारा ज्योति अश्व रथ,
प्राण शक्ति मरुतों से विघ्न रहित विग्रह पथ !

तुम्हीं अग्नि हो, सप्तजिह्व, अति दिव्य तपस द्युति,
पहुँचाती जो अमर लोक तक धी-घृत आहुति !

दिव्य वरुण तुम, चिर अकलुष, ज्यों विस्तृत सागर,
मन की तपः पूत स्थिति, उज्वल, अखिल पाप हर !

तुम्हीं मित्र हो, ज्योति प्रीति की शक्ति समन्वित,
राग बुद्धि कर्मों में समता करते स्थापित !

गरुत्मान तुम, ज्योतित पंखों की उड़ान भर
आत्मा की आकांक्षा को ले जाते ऊपर !

तुम हो भग, आशा-सुखमय, चिर शोक पापहन् !
सूक्ष्म दृष्टि, ईप्सा तप की तुम शक्ति अर्यमन् !

मधुपायी युग अश्विन, तरुण सुभग द्रुत भास्वर,
रोग शमन कर, नव निर्मित तुम करते अंतर !

अमृत सोम तुम, झरते दिव आनंद से मुखर
अन्न प्राण जीवन प्रद मुक्त तुम्हारे निर्झर !

काल रूप यम, करते निखिल विश्व का नियमन,
तुम्हीं मातरिश्वा, सातों जल करते धारण !

तुम्हीं सूर्य, आलोक वर्ण, ऋत चित के ईश्वर,
पथ ऊषाएँ, दिव्य प्रेरणाएँ सहस्र कर !

तुम हो एक, स्वरूप तुम्हारे ही सब निश्चित,
विप्रों से तुम बहुधा बहु नामों से कीर्तित !

प्रच्छन्नमन

वेद ऋचाएँ अक्षर परम व्योम में जीवित,
निखिल देवगण चिर अनादि से जिसमें निवसित !
जिसे न अनुभव अक्षर परम तत्व का पावन
मंत्र पाठ से नहीं प्रकाशित होता वह मन !
जिसे ज्ञात वह सत्य, वही रे विज्ञ विपश्चित,
ज्योतित उसका बहिरंतर, आनंद रूप नित !

एक अंश मानव का मात्र बहिर्मुख जीवन,
शेष अंश प्रच्छन्न मनस् में रहते गोपन !
अंतर्जीवन से जो मानव हो संयोजित
पूर्ण बने वह, स्वर्ग बने यह वसुधा निश्चित !
अन्न प्राण मन अंतर्मन से हों परिपोषित,
सत्य मूल से युक्त ज्योति आनंद हों स्रवित !

तीन अंश वाणी के उर की गुहा में निहित,
अधिमानस से दिव्य ज्ञान हो उनका प्रेरित;
बहिरंतर मानव जीवन हो सत्य समन्वित,
अंतर्वैभव से भौतिक वैभव हो दीपित !
आत्मा का ऐश्वर्य, भूत सौन्दर्य हो महत,
ऊषाओं के पथ से उतरे पूषण का रथ !

सृजन शक्तियाँ

आज देवियों को करता मन भूरि रे नमन,
चिन्मयि सृजन शक्तियाँ जो करतीं जगत सृजन !
माहेश्वरी महेश्वर के संदेश को वहन,
लक्ष्मी श्री सौन्दर्य विभव को करती वितरण !
सरस्वती विस्तार सूक्ष्म करती संपादन,
काली भरती प्रगति, विघ्न कर निखिल निवारण !

आभा देही अदिति, देवताओं की माता,
यह अभिन्न अविभाज्य, एकता की चिर ज्ञाता !
इसके सुत आदित्य सत्य से युक्त निरंतर
भेद बुद्धि दिति के सुत दैत्य, अहम्मय तमचर !

आदि सत्य का सक्रिय बोध इला देती नित,
सरस्वती चिर सत्य स्रोत जो हृदय में स्फुरित !
मही-भारती, वाणी—जिसका ज्ञान अपरिमित,
सद् का देती बोध दक्षिणा, हवि कर वितरित !

शर्मा है प्रेरणा, श्वान जो अचित् में उतर
चित् का छिपा प्रकाश ढूँढ लाता चिर भास्वर !
देवों की शक्तियाँ देवियाँ रे चिर पूजित,
जिनसे मानव का प्रच्छन्न चित्त नित ज्योतित !

इन्द्र

इन्द्र, सतत सत्पथ पर देवें मर्त्य हम चरण,
दिव्य तुम्हारे ऐश्वर्यों को करें नित ग्रहण !

तुम, उलूक ममता के तम का हटा आवरण,
वृक हिंसा औ' श्वान द्वेष का करो निवारण !
कोक काम रति, श्येन दर्प औ' गृद्ध लोभ हर,
षड् रिपुओं से रक्षा करो, देव चिर भास्वर !

ज्यों मृद् पात्र विनष्ट शिला कर देती तत्क्षण,
पशु प्रवृत्तियाँ छिन्न करो हे प्रबल वृत्रहन् !

इन्द्र, हमें आनंद सदा तुम देते उज्वल,
पीछे अघ न पड़े जो आगे हो चिर मंगल !
दिव्य भाव जितने, जो देव तुम्हारे सहचर
वृत्र श्वास से भीत, छोड़ते तुम्हें निरंतर !

प्राण शक्तियाँ मरुत साथ देते जब निश्चय
पाप असुर सेना पर तुम तब पाते नित जय !

दान दान पर करता हूँ मैं, इन्द्र, नित स्तवन,
तुम अपार हो, स्तुति से भरता नहीं कभी मन !
जौ के खेतों में ज्यों गायें करतीं विचरण
देव, हमारे उर में सुख से करो तुम रमण !
सर्व दिशाओं से दो हमको, इन्द्र, चिर अभय,
विजयी हों षड् रिपुओं पर, जीवन हो सुखमय !

वरुण

वरुण, मुक्त कर दो मेरे त्रिक् जीवन बंधन,
पाप निवारक हे, प्रकाश से भर मेरा मन !
ऊपर ओर खुलें ये पाश गुणों के उत्तम,
नीचे अधम, मध्य में हों श्लथ बंधन मध्यम !

अन्न प्राण मन, सत रज तम का हो रूपांतर,
हम चिर अकलुष बनें अदिति का आश्रय पाकर !
यह मानव तन सतत सप्त ऋषियों से रक्षित,
चैत्य प्राण जिनमें सुषुप्ति में भी चिर जागृत !

सदा भद्र संकल्पों से हम हों परिपोषित,
देवों को कर तुष्ट रहें नित स्वस्थ, हृष्ट चित !
भद्र सुनें ये श्रवण, भद्र देखें ये लोचन,
स्थिर अंगों से सदा सत्य पथ करें जन ग्रहण !

ऋजु प्रिय देव सखा बन, रहें सुरों से वेष्टित;
उनकी भद्रा सुमति करे सब की रक्षा नित !
पृथ्वी द्यौ औ' अंतरिक्ष की समिधा देकर
श्रम से तप से अमृत ज्योति का पावें हम वर !

सोमपायी

चिर रमणीय वसंत, ग्रीष्म, वर्षा ऋतु सुखमय,
स्निग्ध शरद, हेमंत शिशिर रमणीय असशय !
मधु केन्द्रों को घेर बैठते ज्यों नित मधुकर,
ज्ञान इंद्रियों पर स्थित सोम पिपासु निरंतर !—

ध्यान मग्न होकर जीवन मधु करते संचय,
अर्पित कर कामना, इन्द्र, तुम में होकर लय !
रथ पर रख ज्यों पैर, बैठ जाते वे तन्मय,
ऋजु पथ से तुम ले जाते उनको ज्योतिर्मय !

जिसकी महिमा गाते हिमवत् सिन्धु नदी नद,
जिसकी बाहु दिशाओं सी फैली हैं कामद,
जहाँ अमृत आनंद ज्योति के झरते निर्झर,
मुक्त सोम रस पीकर पाते धाम वे अमर !

ब्रह्म लोक वह, सूर्य समान अमित ज्योतिर्मय,
मनोगगन द्यौ, विस्तृत सागर सदृश अनामय !
पृथ्वी से अनंत गुण वृद्ध इन्द्र जो ईश्वर
दिव्य शक्तियाँ उसकी अगणित किरणें भास्वर !

मंगल स्तवन

अमित तेज तुम, तेज पूर्ण हो जनगण जीवन,
दिव्य वीर्य तुम, वीर्य युक्त हों सबके तन मन !
दीप्त ओज बल तुम, बल ओज करें हम धारण,
शुद्ध मन्यु तुम, करें मन्यु से कलुष निवारण !
तुम चिर सह, हम सहन कर सकें, धीर शांत बन,
पूर्ण बनें हम सोम, सत्य पथ करें सब ग्रहण !

ज्ञान ज्योति का दिव्य चक्षु सामने अब उदित,
देखें हम शत शरद, शरद शत सुनें भद्र नित !
बोलें हम शत शरद, शरद शत तक हों जीवित,
ऐश्वर्यों में रहें शरद शत दैन्य से रहित !
शत शरदों से अधिक सुनें देखें हम निश्चित,
तन मन आत्मा के वैभव से युक्त अपरिमित !

स्वर्ग शांति दे, अंतरिक्ष दे शांति निरंतर,
पृथ्वी शांति, शांति जल, ओषधि शांति दें अजर !
विश्व देव दें शांति, वनस्पति शांति दें सकल,
ब्रह्म शांति दे, सर्व शांति, दें शांति दिशापल !

शांति शांति दे हमें, शांति हो व्यापक उज्वल,
शांति धाम यह धरा बने, हो चिर जन मंगल !

सन्यासी का गीत

छेड़ो हे वह गान, अनंतोद्भव अभन्न वह गान,
विश्व ताप से शून्य गह्वरों में गिरि के अम्लान
निभृत अरण्य प्रदेशों में जिसका शुचि जन्म स्थान;
जिनकी शांति न कनक काम यश लिप्सा का निःश्वास
भंग कर सका, जहाँ प्रवाहित सत् चित् की अविलास
स्त्रोतस्विनी, उमड़ता जिसमें वह आनन्द अयास;
गाओ, बढ़ वह गान, वीर सन्यासी, गूँजे व्योम,
ओम् तत्सत् ओम् !

तोड़ो सब शृङ्खला, उन्हें निज जीवन बन्धन जान,
हों उज्ज्वल कांचन के अथवा क्षुद्र धातु के म्लान;
प्रेम घृणा, सद् असद्, सभी ये द्वन्द्वों के संधान !
दास सदा ही दास, समादृत वा ताड़ित, परतंत्र,
स्वर्ण निगड़ होने से क्या वे सुदृढ़ न बंधन यंत्र ?
अतः उन्हें सन्यासी तोड़ो, छिन्न करो, गा मंत्र,
ओम् तत्सत् ओम् !

अंधकार हो दूर; ज्योति-छल जल बुझ बारंबार,
दृष्टि भ्रमित करता, तह पर तह मोह तमस विस्तार !
मिटे अजस्र तृषा जीवन की, जो आवागम द्वार,
जन्म मृत्यु के बीच खींचती आत्मा को अनजान;

विश्वजयी वह आत्मजयी जो, मानो इसे प्रमाण,
अविचल अतः रहो सन्यासी, गाओ निर्भय गान,
ओम् तत्सत् ओम् ।

'बोओगे पाओगे; निश्चित कारण कार्य विधान !'
कहते,'शुभका शुभ औ' अशुभ अशुभ का फल,'धीमान्
दुर्निवार यह नियम, जीव के नाम रूप परिधान
बंधन हैं, सच है; पर दोनों नाम रूप के पार
नित्य मुक्त आत्मा करती है बंधन हीन विहार !
तुम वह आत्मा हो सन्यासी, बोलो वीर उदार,
ओम् तत्सत् ओम् !

ज्ञान शून्य वे, जिन्हें सूझते स्वप्न सदा निःसार—
माता, पिता पुत्र औ' भार्या, बांधव जन, परिवार !
लिंग मुक्त है आत्मा ! किसका पिता पुत्र या दार ?
किसका शत्रु मित्र वह, जो है एक अभिन्न अनन्य,
उसी सर्वगत आत्मा का अस्तित्व, नहीं है अन्य !
कहो तत्वमसि सन्यासी, गाओ हे, जग हो धन्य,
ओम् तत्सत् ओम् !

एकमात्र है केवल आत्मा, ज्ञाता, चिर निर्मुक्त,
नाम हीन वह रूप हीन, वह है रे चिह्न अयुक्त;
उसके आश्रित माया, रचती स्वप्नों का भव पाश,

साक्षी वह, जो पुरुष प्रकृति में पाता नित्य प्रकाश !
तुम वह हो, बोलो सन्यासी, छिन्न करो तम तोम;
ओम् तत्सत ओम् !

कहाँ खोजते उसे सखे, इस ओर कि या उस पार ?
मुक्ति नहीं है यहाँ, वृथा सब शास्त्र देव गृहद्वार !
व्यर्थ यत्न सब, तुम्हीं हाथ में पकड़े हो वह पाश
खींच रहा जो साथ तुम्हें ! तो उठो, बनो न हताश ;
छोड़ो कर से दाम, कहो सन्यासी, विहँसे रोम,
ओम् तत्सत ओम् !

कहो, शांत हों सर्व, शांत हों सचराचर अविराम,
क्षति न उन्हें हो मुझसे, मैं ही सब भूतों का ग्राम;
ऊँच नीच द्यौ मर्त्य विहारी, सबका आत्माराम !
त्याज्य लोक परलोक मुझे, जीवन तृष्णा, भवबंध,
स्वर्ग मही पाताल--सभी आशा भय, सुखदुख द्वन्द्व !
इस प्रकार काटो बंधन, सन्यासी, रहो अबन्ध,
ओम् तत्सत ओम् !

देह रहे जावे, मत सोचो, तन की चिन्ता भार,
उसका कार्य समाप्त, ले चले उसे कर्मगति धार;
हार उसे पहनावे कोई, करे कि पाद प्रहार,
मौन रहो; क्या रहा कहो निन्दा या स्तुति अभिषेक ?

विश्वजयी वह आत्मजयी जो, मानो इसे प्रमाण,
अविचल अतः रहो सन्यासी, गाओ निर्भय गान,
ओम् तत्सत् ओम् !

'बोओगे पाओगे; निश्चित कारण कार्य विधान !'
कहते,'शुभ का शुभ औ' अशुभ अशुभ का फल,'धीमान्
दुर्निवार यह नियम, जीव के नाम रूप परिधान
बंधन हैं, सच है; पर दोनों नाम रूप के पार
नित्य मुक्त आत्मा करती है बंधन हीन विहार !
तुम वह आत्मा हो सन्यासी, बोलो वीर उदार,
ओम् तत्सत् ओम् !

ज्ञान शून्य वे, जिन्हें सूझते स्वप्न सदा निःसार—
माता, पिता पुत्र औ' भार्या, बांधव जन, परिवार !
लिंग मुक्त है आत्मा ! किसका पिता पुत्र या दार ?
किसका शत्रु मित्र वह, जो है एक अभिन्न अनन्य,
उसी सर्वगत आत्मा का अस्तित्व, नहीं है अन्य !
कहो तत्वमसि सन्यासी, गाओ हे, जग हो धन्य,
ओम् तत्सत् ओम् !

एकमात्र है केवल आत्मा, ज्ञाता, चिर निर्मुक्त,
नाम हीन वह रूप हीन, वह है रे चिह्न अयुक्त;
उसके आश्रित माया, रचती स्वप्नों का भव पाश,

साक्षी वह, जो पुरुष प्रकृति में पाता नित्य प्रकाश !
तुम वह हो, बोलो सन्यासी, छिन्न करो तम तोम;
ओम् तत्सत ओम् !

कहाँ खोजते उसे सखे, इस ओर कि या उस पार ?
मुक्ति नहीं है यहाँ, वृथा सब शास्त्र देव गृहद्वार !
व्यर्थ यत्न सब, तुम्हीं हाथ में पकड़े हो वह पाश
खींच रहा जो साथ तुम्हें ! तो उठो, बनो न हताश ;
छोड़ो कर से दाम, कहो सन्यासी, विहँसे रोम,
ओम् तत्सत ओम् !

कहो, शांत हों सर्व, शांत हों सचराचर अविराम,
क्षति न उन्हें हो मुझसे, मैं ही सब भूतों का ग्राम;
ऊँच नीच द्यौ मर्त्य विहारी, सबका आत्माराम !
त्याज्य लोक परलोक मुझे, जीवन तृष्णा, भवबंध,
स्वर्ग मही पाताल---सभी आशा भय, सुखदुख द्वन्द्व !
इस प्रकार काटो बंधन, सन्यासी, रहो अबन्ध,
ओम् तत्सत ओम् !

देह रहे जावे, मत सोचो, तन की चिन्ता भार,
उसका कार्य समाप्त, ले चले उसे कर्मगति धार;
हार उसे पहनावे कोई, करे कि पाद प्रहार,
मौन रहो; क्या रहा कहो निन्दा या स्तुति अभिषेक ?

स्तावक स्तुत्य, निन्द्य औ' निन्दक जब कि सभी हैं एक !
अतः रहो तुम शांत, वीर सन्यासी, तजो न टेक ,
ओम् तत्सत् ओम् !

सत्य न आता पास, जहाँ यश लोभ काम का वास;
पूर्ण नहीं वह स्त्री में जिसको होती पत्नी भास;
अथवा वह जो किंचित् भी संचित रखता निज पास !
वह भी पार नहीं कर पाता है माया का द्वार
क्रोध ग्रस्त जो; अतः छोड़ कर निखिल वासना भार
गाओ धीर वीर सन्यासी, गूँजे मन्त्रोच्चार,
ओम् तत्सत् ओम् !

मत जोड़ो गृह द्वार, समा तुम सको कहाँ आवास ?
दूर्वादल हो तल्प तुम्हारा, गृह वितान आकाश;
खाद्य स्वतः जो प्राप्त, पक्व वा इतर, न दो तुम ध्यान,
खान पान से अलुषित होती आत्मा वह न महान
जो प्रबुद्ध हो; तुम प्रवाहिनी स्त्रोतस्विनी समान
रहो मुक्त निर्द्वन्द्व, वीर सन्यासी, छेड़ो तान
ओम् तत्सत् ओम् !

विरले ही तत्वज्ञ ! करेंगे शेष अखिल उपहास,
निन्दा भी नर श्रेष्ठ, ध्यान मत दो, निर्बन्ध, अयास

यत्र तत्र निर्भय विचरो तुम, खोलो मायापाश
अंधकार पीड़ित जीवों के ! दुख से बनो न भीत,
सुख की भी मत चाह करो; जाओ हे, रहो अतीत
द्वन्द्वों से सब ; रटो वीर सन्यासी, मंत्र पुनीत,
ओम् तत्सत् ओम् !

इस प्रकार दिन प्रतिदिन जब तक कर्मशक्ति हो क्षीण,
बंधन मुक्त करो आत्मा को, जन्म मरण हों लीन !
फिर न रह गए मैं तुम ईश्वर; जीव या कि भवबंध;
मैं सब में, सब मुझमें---केवल मात्र परम आनन्द !
कहो तत्वमसि सन्यासी; फिर गाओ गीत अमन्द;
ओम् तत्सत ओम् !

मानसी

यह पुरुष नारी का रूपक है। नेपथ्य में गीत वाद्य : दृश्यों के अनुरूप वेश विन्यास : पिक मिलन भोग का, पपीहा विरह त्याग का प्रतीक है। कुल नारियाँ शालीन रंगों के वस्त्रों में, गोपिकाएँ चटकीले झूलते लहँगों और ओढ़नियों में, भिक्षु भिक्षुणियाँ केसरी और गेरुवे लबादों में, तथा आधुनिकाएँ विविध प्रान्तों के सुरँग सुरुचिपूर्ण परिधानों में नाचती हैं। अंतिम दृश्यों में भविष्य के निर्माता कृषक श्रमिक, मध्य उच्च वर्गों के युवक सफेद और खाकी खादी में, एवं संस्कृति की संदेश वाहिकाएँ नव युवतियाँ रंगीन रेशमी वस्त्रों में, नृत्य नाट्य एवं अभिनय करती हैं। जहाँ अकेले पिक चातक तथा युवक युवती की आत्मा के गीत हैं, वहाँ प्रदर्शन की सुविधानुसार अन्य युवक युवतियाँ भी सहायक हो सकती हैं।

प्रथम दृश्य

(१)

युवक

पिक, गाओ!
नव जीवन के चारण बन
नव प्रणय कथा बरसाओ!
पिक, गाओ!

प्रीति मुक्त हो, बने न बंधन,
विरह मिलन देवें आलिंगन,

हाँ प्रतीति-मन नर नारी जन
दिशि दिशि ज्वाल जलाओ !

आज वसंत विचरता भू पर,
नव पल्लव के पंख खोल कर,
नवल चेतना की स्वर्णिम रज
गंध समीर, उड़ाओ !

कौन तरुणि तुम हँसी रँगीली
बिखराती आँसू से गीली ?
जीवन गैल, प्रिये, कँकरीली
आओ, पर तुम आओ !
पिक, गाओ !

(२)

पिक

बौरी श्री यौवन अमराई,
गंध मंद शीतल पुरवाई,
वह मुग्धा जीवन में आई,
नव ऊषा सी सहज लजाई !
कूहू, कुहु कूहू !

फूलों का उसका कोमल तन,
सौरभ की साँसों का मृदु मन,

रोओं रोओं में आलिंगन
चित्र लिखी थी रूप लुनाई !
कूहू, कुहु कूहू !

कुटिल कँटीला इस जग का मग,
रँगे रुधिर से जीवन के पग,
पीड़ा की प्रेमी की रग रग,
व्यथा प्रेम की ही परछाँई !
कूहू, कुहु कूहू !

प्रेम ? प्रेम को मिला शाप रे,
मनस्ताप वह मनस्ताप रे,
जग जीवन के लिए पाप रे,
नभ में विरह घटा घिर छाई !
कूहू, कुहु कूहू !

(२)

युवक

तुम जाओ, सखि, जाओ !
पाप शाप से बचो, प्रिये, तुम
ताप न उर में पाओ !
तुम जाओ !

प्राण, प्रणय-विष पान मत करो,
प्राणों को दे प्राण मत हरो,
प्रिय का उर में ध्यान मत धरो,
पथ में मत बिलमाओ !

जब तक जीवन में वसंत है,
यौवन से मुकुलित दिगंत है,
आशा सुख सपने अनंत हैं,
प्रिय का मोह भुलाओ !
तुम जाओ !

युवती

जैसे तुम हो, वैसे ही जन,
वही हृदय औ' लोभी लोचन,
वही प्रणय का ताप है गहन,
तुम मत हृदय दुखाओ !
प्रिय, आओ !

किसको रे वह ऐसी क्षमता
रोक सके प्राणों की ममता,
यह मन का स्वभाव, वह रमता,
मुझको राह सुझाओ !
प्रिय, आओ !

युवक

फूलों की मृदु देह तुम्हारी,
काँटों की कटु गैल हमारी,
प्रणय ताप अति दु:सह प्यारी,
वृथा न हृदय लुभाओ!
तुम जाओ!

प्रणय अचिर, दो दिन का सपना,
तन का तपना, मन का तपना,
सुन न सकूँगा प्रिये, कलपना,
अपना सुख न गँवाओ!
तुम जाओ!

दूसरा दृश्य

पपीहा

(४)

पी कहाँ, पी कहाँ ?
प्रेम बिना सूना जग जीवन,
प्रिय के मधुर प्रतीक्षा के क्षण,
बरसाओ, प्रिय, स्वाति सुधा कण
बाट जोहता विश्व यहाँ!

प्रेम बिना जन हैं जीवन्मृत,
प्रेम बिना अपने में सीमित,
मिलता जहाँ प्रणय चरणामृत,
मृत्यु न आती पास तहाँ !

प्रेम नहीं प्राणों का बंधन,
प्रेम नहीं अस्थिर विरह मिलन,
प्रेम मुक्ति है, प्रेम ही सृजन,
सुख दुख में आनंद जहाँ !

प्रेम वृष्टि में कर अवगाहन
बनो भीत प्रणयी चिर पावन,
जहाँ हृदय में लगन, स्वाति घन
बरसेंगे हो विवश वहाँ !

प्रेमी के आँसू के हों घन,
प्रेयसि की स्मृति के विद्युत् त्तण,
चिर अतृप्ति की उर में गर्जन,
विरह मिलन बन जाय महा !

(५)

युवक

तुम आती हो तो आओ, प्रेयसि, आओ,
जीवन पथ में सौंदर्य किरण बरसाओ !

यह सच है, सूना प्रेम बिना जग जीवन,
नर नारी प्रणय आज कटु जीवन बंधन,
तुम छाया नारी से मानवी कहाओ !

तुम विरह मिलन से मुक्त प्रणय बन आना,
तन भीति रहित, भव जीवन को अपनाना;
निज हृदय माधुरी में जग को नहलाओ !

तुम सृजन शक्ति बन मेरे उर में गाना,
तुम चिर प्रतीति बन जन मन में घुल जाना,
प्राणों में स्वर्गिक सौरभ मधुर बसाओ !

जन एक प्राण दो देह, अभिन्न हृदय हों,
प्रत्यय हो मन में, संशय नहीं उदय हो;
उर की उर, जीवन की जीवन बन जाओ !
तुम आती हो तो आओ, प्रेयसि, आओ !

युवती

मैं आती हूँ, जीवन, आती हूँ प्रियतम,
हृदयों का प्रेम प्रकाश, नहीं तन का तम,
तुम खोल हृदय पट, प्रिय, फिर मुझे बुलाओ,
युवक—तुम आओ मानसि, आओ, प्रेयसि आओ !

प्रिय, मैं ही सीता, मैं सावित्री, राधा,
हरती आई जग जीवन पथ की बाधा,

पा मातृ शक्ति, जन मंगल, प्राण, मनाओ,
युवक—आओ हे आभा देही देवी, आओ !

मैं गार्गी, घोषा, सूर्या, अदिति, प्रवीणा,
भारती, मालती, मल्ली, खना, नवीना,
जन जन के उर में तुम आह्वान उठाओ,
युवक—आओ हे, युग की दिव्य विभा बन आओ !

मैं दुर्गा लक्ष्मी काली पावन चरणा,
मैं भक्ति शक्ति सौन्दर्य माधुरी करुणा,
तम का विनाश, युग का निर्माण कराओ;
युवक—आओ हे, जग जीवन धात्री तुम आओ !

कब से मुख पर धर लज्जा का अवगुंठन
मैं बनी मनुज की मोह वासना की तन,
मैं तुम्हें शक्ति देती, व्यवधान हटाओ;
युवक—आओ, ऊषा बन, अनवगुंठिते, आओ !

तीसरा दृश्य

(६)

युवती

मैं आई, फिर प्रियतम, आई !
युग युग के रूपों की मेरी
देखो तुम छिपती परछाँई !

तुम क्या नर थे, मैं क्या नारी,
वधू अधीना, पति अधिकारी,
तुमने मेरी फूल देह पर,
तप्त लालसा सेज सजाई !

मैं मानवी आज जन धात्री,
मानव सहचरि, जीवन छात्री;
भीत न होओ, प्रिय, अब नारी
लेती जागृति की अँगड़ाई !

मुझको अब नारी तन धोना,
देह मोह निज तुमको खोना,
मैं यदि फिसलूँगी युग पथ पर
प्रिय, तुम होगे उत्तरदायी !

खिसका आज देह की छाया
आभा पुनः बनेगी माया,
संस्कारों की क्रांति धरा पर
स्वर्ण शांति लाएगी स्थायी !

युग युग के रूपों की मेरी
देखो, प्रिय, छिपती परछाँई !

(७)

सीता राम, सीता राम,
दया धाम हे प्रणाम !

हम नर छाया कुल नारी,
पतिव्रता, पति की प्यारी,
गृह दासी औ' महतारी
कलह अविद्या अँधियारी !
लज्जा सज्जामय गुण ग्राम,
सीता राम, सीता राम !

जब घर से बाहर जातीं
छुईमुई सी कुम्हलातीं,
देख जनों को सकुचातीं,
नयन लालसा उकसातीं !
कर लेतीं सब घर के काम,
सीता राम, सीता राम !

युग युग से हम अवगुंठित,
गृह की दीप शिखा कंपित,
देह मोह में ही सीमित,
पुरुष मात्र से आतंकित !
विधि सदैव से हम पर वाम,
सीता राम, सीता राम !

कौन जगाता हमें स्वजन
उर के तम में भर कंपन,

दबा राख में पावक कण,
उसे जगा दे आज पवन !
प्रभु अबला का कर लें थाम,
सीता राम, सीता राम !

(८)

राधे श्याम, राधे श्याम,
विश्व रूप हे ललाम !
आई थीं एक बार
हम तन मन प्राण वार,
सुन मधु मुरली पुकार
छोड़ नेह गेह द्वार,
तज निज सब काज काम,
राधे श्याम, राधे श्याम !

यमुना की कल तरंग
बनीं चपल भृकुटि भंग,
अंग अंग में उमंग
नृत्य गीत रास रंग,
अधरों पर मधुर नाम
राधे श्याम, राधे श्याम !

बही गीति काव्य धार
रस के निर्झर अपार,

संस्कृति वह थी उदार
जीवन था नहीं भार,
जन मन थे पूर्ण काम
राधे श्याम, राधे श्याम !

निखिल नायिका ललाम
हम ब्रज की रहीं वाम,
प्रीति रीति में प्रकाम,
बिकीं बँधी बिना दाम
मधुर भाव में अकाम,
राधे श्याम, राधे श्याम !

कौन आज यह कुमार
करता फिर से प्रचार,
किस लिए कुलीन नार
करे फिर धराभिसार ?
ऐसा वह कौन काम,
राधे श्याम, राधे श्याम !

(६)

बुद्ध की शरण,
धर्म की शरण,
संघ की शरण !

इच्छा मानव दुख का कारण,
इच्छा का यदि करें निवारण,
तो जग जीवन हो फिर पावन
चिर निर्वाण मिले भव तारण !
बुद्ध की शरण,....

सेवा ही हो जीवन का व्रत,
सेवा ही में हो जीवन रत,
सेवा हित जो हो मस्तक नत
बोधिसत्व के मिलें शुचि चरण !
बुद्ध की शरण,...

जीव मात्र पर बरसे करुणा,
मानव उर में हरसे करुणा,
सेवा के हित तरसे करुणा,
मिटें शोक सब जन्म औ' मरण !
बुद्ध की शरण,....

छोड़ो हे मिथ्या माया जग,
रोग जरा औ' मृत्यु के विहग,
पकड़ो भिक्खु भिक्खुणी का मग
जीवन की भय भीति हो हरण !
बुद्ध की शरण,....

किंतु उच्छ्वसित हो रह रह मन
प्राणों में भरता क्यों क्रंदन,
स्वप्नाकुल क्यों होते लोचन
भिक्खु, ज्ञात क्या तुमको कारण ?
बुद्ध की शरण,

धर्म की शरण,
संघ की शरण !

चौथा दृश्य

(१०)

नेपथ्य गीत

जीवन में जितना डूबोगे उतना ही तुम उकताओगे,
मधु में लिपटा कर पंख, मधुप, फिर सहज नहीं उड़ पाओगे !
सुख की तृष्णा बनती विषाद, सुख दुख में जो तुम धीर रहो,
दुख में तुम रुकना सीखोगे, औ' सुख में चरण बढ़ाओगे !
जो सहज तैर लेते जग में, आगे बढ़ वही पार पाते,
तुम रँगे लालसा रँग में जो, गेरुवा पहन के जाओगे !
आसक्ति विरक्ति अकेले ही घूँघट पट नहीं उठाएँगी,
जो निरत हुए पछताओगे, जो विरत हुए क्या पाओगे ?
रति और विरति के पुलिनों में बहती जीवन रस की धारा,
रति से रस लोगे और विरति से रस का मूल्य लगाओगे !

नारी में फिर साकार हो रही नव्य चेतना जीवन की,
तुम त्याग भोग को सृजन भावना में फिर नवल डुबाओगे।

(११)

रूप शिखा

आधुनिका !

फूलों की तन-सुवास,
लहरों का चरण लास,
शशि का मधु सुधा हास
विद्युत् का भ्रू विलास
रूप शिखा !

भाल पर न बेंदि सुघर
माँग में न सेंदुर वर,
रँगतीं हम मधुर अधर
भ्रू धनु में कज्जल भर !
रूप शिखा !

छूटी पट की संस्कृति,
हृदय रहित मधुराकृति,
दे रहीं प्रगति को गति
हम नव युग की भारति,
रूप शिखा !

युवक

शोभा का है प्रिय तन,
मुक्त नहीं तन से मन,
प्रिये, धीर धरो चरण
रिक्त क्या न यह जीवन ?
रूप शिखा !

आई घर से बाहर
चकाचौंध नयनों पर,
छोड़ मध्य युग की डर
मानवी न बनी निखर !
रूप शिखा !

तुम थीं भारत महिमा
आज ध्वंस युग प्रतिमा,
तुम में क्या उर गरिमा ?
केवल तन की लघिमा !
रूप शिखा !
आधुनिका !

(१२)

हम प्रीति शिखा
अति आधुनिका !

हम रे गोरी भोरी परियाँ
हम अस्ताचल की अप्सरियाँ,
मधु मुखर प्रणय की निर्झरियाँ,
हम नव युग ज्योति उजागरियाँ,
हम प्रीति शिखा !

हम पढ़ी लिखीं नव नागरियाँ,
गोरस न, सुरा की गागरियाँ,
हम नहीं गृहों की चाकरियाँ,
हम नृत्य निपुण गुण आगरियाँ,
हम प्रीति शिखा !

अंगों पर देतीं विरल वसन
जिससे विमुक्त निखरे यौवन,
हम तोड़ प्रणय के कटु बंधन
मोहित करती जन जन के मन,
हम प्रीति शिखा !

तन पर न हमारे अवगुंठन,
धर हाथ पकड़ लेतीं हम मन,
मिलतीं सब से खुल के गोपन
क्या हम आदर्श नहीं स्त्री जन ?
हम प्रीति शिखा !

युवक

प्रिय सखि, तुम पूरब में आई
पर तनिक नहीं जागृति लाई,
ले फूल विहग की सुघराई
तुम विभव स्वप्न में अलसाई,
तुम प्रीति शिखा !

तुमको प्रिय प्राणों का जीवन
अति भरा स्नायुवों में स्पंदन,
तुम हो युग जीवन की दर्पण,
यह प्रगति नहीं, री चपल चरण,
तुम प्रीति शिखा !

पाँचवा दृश्य

(१३)

नेपथ्य गीत

शारदे !
शरद हासिनी,
तम विनाशिनी, जग प्रकाशिनी,
नव स्मिति की ज्योत्स्ना बरसाओ
वसुधा पर, जीवन विकासिनी !
शारदे !

नवल नीलिमा से नत अंबर,
निर्मल सुख से कंपित सरि सर,
उतरो हे आभामयि, भू पर,
कुमुद आसनी !

शुभ्र चेतना सी नव विचरो,
भाव लहरियों को छू निखरो,
पृथ्वी के तृण तृण पर बिखरो,
ज्योति लासिनी !

स्वप्न जड़ित भू रज हो चेतन,
तन से ज्योत्स्ना सा छिटके मन,
दृग तारा से झरें नव किरण,
हृदय वासिनी !

आओ, नव नारी बन आओ,
जग को शोभा में लिपटाओ,
नव जीवन की सुधा पिलाओ,
श्री विलासिनी !

(१४)

नेपथ्य गीत

ताराओं सी शुचि आत्माएँ मैं आज धरा पर भेजूँगी,
नव भाव शक्तियों से भू को मैं फिर से सहज सहेजूँगी !
मैं ही सोई जग के तम में, मैं ही शत रंगों में जगती,

मैं नर नारी में आज द्विधा हो जीवन के भुज भेटूँगी !
जो जन मन आज उठे ऊपर मैं फिर धरती पर उतरूँगी,
मानव के उर में कर प्रवेश जग में नव जीवन देखूँगी !
लो, आज तुम्हें छूती हूँ मैं अपने आभा के अंचल से,
मानव के स्वर्गिक स्वप्नों को मैं जीवन की देही दूँगी !

छठा दृश्य

(१५)

युवक

मानिनि, अधिक विलम्ब मत करो !
ओ मानव की स्वर्णिम मानसि,
उतरो अब धरती पर उतरो !

युवती

प्रिय, मैं उतर धरा पर आई !
उदय शिखर पर नव युग की
देखो, अब स्वर्ण ध्वजा फहराई !

युवक

निखिल सृष्टि की बन तुम आशय,
जीवन की संकल्प असंशय,
अंतर्मन की चिर अभिलाषा
सृजन तत्व की सार बन प्रणय,

युग युग के जग जीवन के
चिर ज्ञान कला से प्रेयसि, निखरो !
मानव की चिर मानसि, विचरो,
तुम फिर से धरती पर विचरो !

युवती

मानव उर की आशा के पर,
जीवन के स्वप्नों का तन धर,
सृजन चेतना सी सदेह
उर उर में मधुर प्रतीति बन अमर,

आज सृजन आनन्द से उमँग
मैंने जीवन रज लिपटाई !
पुनः सूक्ष्म से स्थूल बनी मैं
छिपीं ज्योति में सब परछाईं !
प्रिय, मैं उतर धरा पर आई !

(१६)

नेपथ्य गीत

आज हँस उठे जीवन के रँग !
फूल कली तृण सतरँग बादल
उमग उठे पुलकित हो उर अँग !
मधुर अवनि अब, मधुर निखिल जग
मधुर नीलिमा, मधुर मुखर खग,

मधुर शूल, सुमधुर जीवन मग,
मधुर दुःख सुख, मधुर मरण सँग !

आशा अभिलाषाएँ हँसतीं,
प्रीति प्रतीति हृदय में बसती,
देव भावना उर में जगती
आत्मत्याग से झंकृत रग रग !

नव प्रकाश से गईं दिशा भर
लोट रहीं किरणें भू रज पर,
स्वर्ग धरा पर गया हो उतर,
स्वर्ण सृष्टि लगती सहज सुभग !

युग युग के दुख ग्लानि पराभव,
मनुज विजय से दीपित अभिनव,
मिला भिक्षु को त्रिभुवन वैभव,
रोके रुकते नहीं प्रीति पग !

(१७)

युवक

पुण्य स्पर्श नारी का पावन !
देह प्राण से आज उठ गया
ऊपर प्रमदा का शोभा तन !
अब तक दीप शिखा तन छूकर

उद्दीपित होता था अंतर,
मुक्त चेतना का प्रवाह अब
बहता उस तन से संजीवन !

पुष्पों की श्री का तन शोभन
बना प्रीति का पुण्य निकेतन,
आज शांत उसका आकर्षण
आलोकित उसका उद्दीपन !
नारी अब न देह अवगुंठन,
केवल हृदय, हृदय वह मोहन,
अब वसुधा पर होगा स्वर्गिक
भावों के पुष्पों का वर्षण !
तन मन से ऊपर जो जीवन
पा कर उसका नव संवेदन
स्वर्ण धरा पर स्वर्ग का सृजन
प्रिये, करेंगे अब भू के जन !

सातवाँ दृश्य

(१८)

युवती

धिक्, हम कैसे प्रेम पथिक !
प्रीति सूत्र में बँध कर जो हम
बन सकते भू के न श्रमिक !

आओ, भू को आज बुहारें
युग युग का अघ कर्दम झारें,
जीवन का गृह प्रथम सँवारें
जन श्रम से शोभित हों दिक् !

किया नहीं सौन्दर्य सृजन जो
किया नहीं माधुर्य वहन जो
रे किस लिए मनुज जीवन जो
जन में नहीं विभव आत्मिक !

पिया नहीं जो जीवन मधु दुख,
मिला न जो भू रचना में सुख,
तो क्यों नर नारी हों उन्मुख,
युग्म प्रीति के रिक्त रसिक !

प्रिय, तुम बीज—प्राण, तुम धरती,
अंकुर सी उठ सृष्टि निखरती,
जीवन हरियाली मन हरती
प्रीति हमारी नहीं क्षणिक !

आओ, भरें धरा पर प्लावन
स्वेद सिक्त श्रम का चिर पावन,
युग्म प्रीति का विश्व जागरण
गावें मुक्त पिकी नव पिक !

युवक युवतियाँ

प्रतीति प्रीति प्राण में,
चरण धरो, चरण धरो,
लिए हो हाथ हाथ में, न तुम डरो, न तुम डरो !

मनुष्यता रही पुकार
छोड़ देह मोह भार,
खोल रुद्ध हृदय द्वार, देह द्रोह दो विसार !
भाल के कलंक पंक को मनुष्य के हरो !

महान क्रांति आज हो,
अखंड राम राज हो,
अभीष्ट लोक काज हो, सुसभ्य जन समाज हो !
उठो, सदुच्च ध्येय, धैर्य, शौर्य, वीर्य को वरो !

न रक्तपात युद्ध हो,
न ऊर्ध्व शक्ति रुद्ध हो,
मनुष्य शुद्ध बुद्ध हो, विदेह मन न क्रुद्ध हो,
अभय अमर हो मृत्यु आज साथ साथ जो मरो !

क्षुधार्त रे असंख्य प्राण,
नग्न देह, बुद्धि म्लान,
रोग व्याधि से न त्राण, निश्चय लो आज जान,
तुम प्रथम मनुष्य हो, न युग्म मात्र, स्त्री नरो !

विनम्र शिष्ट निरभिमान
पुरुष नारि हों समान,
प्रीति प्राण, मुक्त ज्ञान, युक्त कला नृत्य गान,
स्वर्ग तुल्य हो धरा, जघन्य रूढ़ियो झरो !

(२०)

नव युवतियाँ

ये पारिजात हैं पूजन के,
ये आम्र मौर अभिनंदन के,
ये शुचि सरोज पावन मन के,
अपलक गुलाब प्रेमी जन के,

यह संस्कृति का संदेशा है,
तुम ग्रहण करो, तुम ग्रहण करो !
यह शास्ति सभ्यता की है प्रिय,
तुम वहन करो, तुम वहन करो !

यह जुही सुघर रुचि चावों की,
भीनी चंपा नव भावों की,
मृदु शील मयी चिर मौलसिरी, उर गरिमा से केतकी भरी,
तुम स्नेह दया सहृदयता से जन मन की ईर्ष्या घृणा हरो !

ये बेला की कलियाँ स्मृति की,
यह कुंद कली निश्छल स्मिति की,
यह चारु चमेली सज्जा की, यह छुईमुई प्रिय लज्जा की,
तुम नव जीवन की श्री शोभा, सुख आशा वैभव आज वरो !

मंजरि अशोक की मंगलमय,
रोमिल शिरीष शोभा में लय,
ये हँस हँस झरते हर सिंगार, यह पुलकाकुल कचनार डार,
तुम विनय साधना सत्य त्याग से बाधाओं को निखिल हरो !

स्वप्नों की कुँई मधुर मोहन,
पाटल विराग से गैरिक तन,
कामिनी सती सी स्वच्छ सुघर, स्वर्णिम गेंदा संतोष अमर !
नव मानवता की सौरभ से तुम वसुंधरा को आज भरो !

ये पौरुष से रक्तिम पलाश,
ये स्वर्ण शांति के अमलतास,

मालती भरी उर ममता से, सुर चंदन सौरभ क्षमता से,
मानव जीवन के योग्य बना इस पृथ्वी को, मानव विचरो !
यह संस्कृति का...

युवक— प्रतीति प्रीति प्राण में, चरण धरो, चरण धरो !

युवतियाँ— हृदय सुमन, प्रणय सुरभि, ग्रहण करो, ग्रहण करो !

युवक— लिए हो हाथ हाथ में, न तुम डरो, न तुम डरो !

युवतियाँ— सृजन विकास की शिखा वहन करो, वहन करो !